भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

रिपोर्ट संख्या 277

अनुचित अभियोजन (न्याय की हत्या): विधिक उपचार

अगस्त, 2018

डॉ0 न्यायमूर्ति बलबीर सिंह चौहान
पूर्व न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय
अध्यक्ष
भारत का विधि आयोग
विधि एवं न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

सत्यमेव जयते

Dr. Justice B. S. Chauhan
Former Judge, Supreme Court of India
Chairman
Law Commission of India
Ministry of Law & Justice
Government of India

अ.शा.सं.6(3)319/2017-एलसी(लोस) 30 अगस्त, 2018

प्रिय श्री रवि शंकर प्रसाद जी,

दिल्ली उच्च न्यायालय ने बबलू चौहान उर्फ डब्ल्यू बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र - दिल्ली सरकार, 247 (2018) डीएलटी 31 के मामले में अनुचित अभियोजन और निर्दोष लोगों के बन्धीकरण पर गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए कानूनी रुपरेखा बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया है ताकि ऐसे लोगों को राहत प्रदान कही जा सके।

राज्य के द्वारा न्याय के दुरुपयोग से पीडित लोगों को प्रभावी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरुप अनुचित अभियोजन देश की आपराधिक न्याय प्रणाली में एक कमी है जो कि वर्तमान में एक समस्या के रुप में खडी है। साथ ही इस संबंध में वर्तमान में राज्य के जिम्मेवारी को स्पष्ट करने वाले कोई भी वैधानिक या कानूनी प्रावधान नहीं हैं। इसलिए न्यायालय ने आयोग को इस विषय पर एक समग्र जांच के लिए निर्देशित किया है और अपनी अनुशंसाएं भारत सरकार को भेजने के लिए कहा है।

संविधान का अनुच्छेद 21 नागरिकों को जीवन की सुरक्षा एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान करता है। पुलिस और अभियोगिय दुराचरण के कारण मौलिक अधिकारों के हनन होने पर राज्य की जिम्मेवारी प्रारम्भ होती है। मौलिक अधिकारों की रक्षा करने वाले संविधान में इन पर अतिक्रमण होने पर राज्य के द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति पर कोई भी प्रावधान नहीं दिया गया है। यहां तक कि वर्तमान व्यवस्था के अन्य प्रावधानों के तहत दिये गये अन्य विधिक उपचार अनुचित अभियोजन के परिणामस्वरुप न्याय के दुरुपयोग के लिए दी जाने वाली क्षतिपूर्ति के प्रावधान जटिल एवं अनिश्चित हैं। आयोग ने उक्त 'न्याय की हत्या' पर लागू करने के लिए कुछ मानक निर्धारित किऐ हैं और किस परिमाण तक अनुचित अभियोजन आता है की व्याख्या की है। पूरी प्रक्रिया में स्पष्टता के लिए आयोग ने दण्ड प्रक्रिया संहिता में संसोधन के लिए अनुशंसा की है तथा एक प्रारुप विधेयक जिसका शीर्षक "दण्ड प्रक्रिया संहिता (संसोधन) विधेयक, 2018" तैयार किया है।

कमरा सं. 405, चतुर्थ तल, 'बी' विंग, लोक नायक भवन, खान मार्केट, नई दिल्ली-110003 / Room No. 405, 4th Floor, 'B' Wing, Lok Nayak Bhawan, Khan Market, New Delhi-110003
दूरभाष/Tel: 011-24654951, फैक्स/Fax : 24654950 ई-मेल/email : justicechauhan@gmail.com

यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आयोग की रिपोर्ट संख्या 277 जिसका शीर्षक अनुचित अभियोजन (न्याय की हत्या): विधिक उपचार है को सरकार के विचारार्थ अग्रेषित कर रहा हुं। मैं इस रिपोर्ट को तैयार करने में सुश्री निधी अरोडा, परामर्शदाता के योगदान की भूरी भूरी प्रशंसा करता है।

सादर,

भवदीय,

डॉ.न्यायमूर्ति बलबीर सिंह चौहान,

श्री रवि शंकर प्रसाद,
माननीय विधि एवं न्याय मंत्री,
विधि एवं न्याय मंत्रालय,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110015

कमरा सं. 405, चतुर्थ तल, 'बी' विंग, लोक नायक भवन, खान मार्केट, नई दिल्ली-110003 / Room No. 405, 4th Floor, 'B' Wing, Lok Nayak Bhawan, Khan Market, New Delhi-110003
दूरभाष/Tel: 011-24654951, फैक्स/Fax : 24654950 ई-मेल/email : justicechauhan@gmail.com

रिपोर्ट संख्या 277

अनुचित अभियोजन (न्याय की हत्या): विधिक उपचार

विषय - सूची

अध्याय	शीर्षक	पृ. सं
I	**परिचय और संदर्भ**	1
	क. दिल्ली उच्च न्यायालय से संदर्भ	1
	ख. विचाराधीन मुद्दे	3
	ग. आयोग की पिक्षली रिपोर्ट	6
	I. 'अपकृत्य पर राज्य की जिम्मेवारी' प्रथम रिपोर्ट (1956)	6
	II. जेलों अभियोगाधीन कैदियों की बढती संख्या पर 78वीं रिपोर्ट (1979)	6
	III. 'पुलिस अभिरक्षा में क्षति' पर 113वीं रिपोर्ट (1985)	7
	IV. 'अभिरक्षण संबंधी अपराध' पर 152वीं रिपोर्ट (1994)	7
	V. 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973' पर 154वीं रिपोर्ट (1996)	8
	VI. 'भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872' पर 185वीं रिपोर्ट (2003)	8
	VII. संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलन के तहत याताना एवं अन्य निर्दयी, अमानवीय, और अपमानजनक व्यवहार या दण्ड के समझौते को विधान के माध्यम से क्रियान्वयन (2017) करने पर 273वीं रिपोर्ट	8
	घ. वर्तमान रिपोर्ट	9
II	**आंकडे एवं विश्लेषण**	10
III	**अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य**	15
	क. नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा(आईसीसीपीआर)	15
	ख. यूनाईटेड किंगडम	17
	(i) आपराधिक न्याय अधिनियम, 1988	18
	(ii) आपराधिक मुकद्दमा समीक्षा आयोग (सीसीआरसी)	18
	(iii) यूके पुलिस अधिनियम, 1996	20
	ग. जर्मनी	20
	(i) ग्रुन्दगेसेत्ज़- संविधान	

	(ii) आपराधिक अभियोजन कार्यवाही के लिए क्षतिपूर्ति कानून, 1971	21
	(iii) कानून प्रर्वतन उपायों के लिए क्षतिपूर्ति कानून	21
	(iv) जर्मन आपराधिक संहिता	22
	(v) जर्मन नागरिक संहिता	22
	घ. संयुक्त राज्य अमेरिका	24
	(i) संघीय कानून	24
	(ii) राज्य कानून	
	ड. कनाडा	26
	च.न्यूजीलैण्ड	28
	छ. ऑस्ट्रेलिया	30
IV	**वर्तमान परिदृश्य- समीक्षा एवं अपर्याप्तताएं**	32
	क. शासकीय कानूनी उपाय	32
	ख. **अशासकीय कानूनी उपाय**	41
	ग. **आपराधिक कानूनी उपाय**	45
	(i) भारतीय दण्ड संहिता, 1860	45
	क. सेवकों के द्वारा एवं उनसे संबंधित अपराध	45
	ख. लोक न्याय के विरुद्ध झूठे साक्ष्य एवं अपराध	51
	ग. निर्णय विधि	57
	(i) आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973	59
	(ii) पुलिस अधिनियम, 1861	64
	ड. मानवाधिकार आयोग	65

V	**न्याय की हत्या के मानक**	67
	क. न्याय की हत्या के लिए लागू किए जाने वाले मानक	67
	ख अनुचित अभियोजन क्या है?	72
VI	**निष्कर्ष और सिफारिश**	74
	क. निष्कर्ष	74
	ख. अनुशंसाएं	77
	अनुलग्नक - आपराधिक प्रक्रिया सहिंता (संसोधन) विधेयक, 2018	84
	केसों की सूची	92

स्वीकृतियाँ

इस रिपोर्ट की विषय वस्तु को तैयार करने के लिए एक केंद्रित अध्ययन की आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान में गलत तरीके से अभियोजन के लिए कानूनी उपचार प्रदान करने के लिए कोई भी प्रावधान विधायी ढांचे में मौजूद नहीं है। आयोग श्रीमान न्यायमूर्ति ए पी साही, वरिष्ठ न्यायाधीश, प्रयागराज उच्च न्यायालय, न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) श्री प्रत्यूष कुमार; श्री सिद्धार्थ लूथरा, वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय; श्री अभय, महानिदेशक, नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो; और डॉ अपर्णा चंदारा, सहायक प्रोफेसर, राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली द्वारा इस प्रयास में मूल्यवान सहायता और सलाह देने के लिए आभारी है।

****

अध्याय 1

परिचय

क. दिल्ली उच्च न्यायालय से सन्दर्भ

1.1 बबलू चौहान उर्फ डब्ल्यू बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र - दिल्ली सरकार[1] के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने जुर्माने के विषय एवं बिना किसी अपराध के सजा देने के फैसले और अपील के लम्बित होने के दौरान सजा को समाप्त करने से संबधित अपील की सुनवाई के दौरान अपनी गंभीर चिंता ऐसे निर्दोष लोगों के बार में व्यक्त की है जिन्हें पहले तो दोषी ठहरा दिया जाता है परन्तु कई वर्षों की कैद के बाद यह पाया जाता है कि वे अपराधी नहीं हैं और उन्हें राहत देने के लिए वर्तमान व्यवस्था में कोई भी कानूनी रुपरेखा का प्रावधान नहीं है। न्यायालय ने अपने 30 नवम्बर, 2017 के आदेश में विशेष रुप से भारत के विधि आयोग का आह्वान करते हुए 'अनुचित अभियोग से पीडित और कैद में रहने वाले लोगों को राहत'(सन्दर्भ) देने के मुद्दे पर व्यापाक जांच करने के लिए कहा है कि :

वर्तमान में हमारे देश में कोई भी वैधानिक या कानूनी व्यवस्था नहीं है जिससे कि अनुचित तरीके से कैद व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति प्रदान की जा सके। कारावास के कई वर्षों के बाद उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के द्वारा बरी किए जाने के उदाहरण अक्सर देखने में आते हैं। वे समाज में दोबारा समेकन या पुर्नवास की किसी आशा के बिना अपने चिन्ह छोडकर चले जाते हैं क्योंकि उनके जीवन के सर्वश्रेष्ठ वर्ष जेल की सलाखों, अनदेखी कैद की ऊंची दीवारों के पीछे बीत जाते हैं। नागरिक उपचारों को अभिमन्त्रित करने की संभावना जेल की मियाद की परिकल्पना प्रभावशाली, किफायती या समय पर विचार नहीं कर सकती है.....

.....खत्री बनाम बिहार राज्य (1981) 1 एससीसी 627; वीना सेठी बनाम बिहार राज्य एआईआर 1983 एससी 339; रुदुल शाह बनाम बिहार राज्य एआईआर 1983 एससी 1086; भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य (1985) 4 एससीसी 677और सन्त बीर बनाम बिहार राज्य एआईआर 1982 एससी 1470 कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय

---

[1] 247(2018) डीएलटी 31।

कहा है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत दिये गये मौलिक अधिकारों का उल्लघंन होने पर संवैधानिक न्यायालयों द्वारा क्षतिपूर्ति दी जा सकती है। इन क्षतिपूर्ति के उदाहरणों में वे भी शामिल हैं जिनको अनुचित तरीके से कैद किया गया है। परन्तु ऐसे उदाहरण उपख्यानात्मक हैं और आसानी से सभी समान स्थित में व्यक्तियों के लिए उपलब्ध नहीं है।

इसलिए वर्तमान में एक कानूनी (अच्छा हो कि विधायी) रुपरेखा की आवश्यकता है जिसके द्वारा अनुचित अभियोग और कैद से पीडित व्यक्तियों को राहत प्रदान की जासके.....विशेषकर उन लोगों को क्षतिपूर्ती प्रदान करने का प्रश्न है जिनको अनुचित तरीके से कैद किया गया है, प्रश्न उन परिस्थितियों और स्थितियों का भी है जिन में यह राहत उपलब्ध होगी, किस रुप में और किस अवस्था में यह राहत दी जाएगी यह भी महत्वपूर्ण प्रश्न है.....

इसके अनुरुप न्यायालय ने भारत के विधि आयोग से इस आदेश के पैरा 11 से 16 के मध्य विशिष्ट दर्शाए गये बिन्दुओं पर एक व्यापक परीक्षण करने का अनुरोध किया है और अपनी अनुशंसाएं भारत सरकार को प्रेषित करने का कष्ट करें। (जोर देते हुए कहा)

ख.विचाराधीन मुद्दे

1.2 'न्याय की हत्या"शब्द का व्यापाक विस्तार है। इसे न्याय में त्रुटि के रुप में परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ "बयानों, प्रक्रियाओं या कानून के क्रियान्वयन की गलत व्याख्या करना, विशेष रुप से ऐसी गलतियां जिसके कारण निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघनहोता है जिसके कारण निर्दोष लोगों को सजा हो जाती है"[2] वार्टन के कानूनी शब्द कोष (9वां संस्करण) 'न्याय की हत्या' को न्याय की असफलता के रुप में परिभाषित करता है।

1.3 बिभाबती देवी बनाम रामेन्द्र नारायण रॉय,[3]के मामले में प्रीवी परिषद ने 'न्याय की हत्या'शब्द को रेखांकित करते हुएबताया है कि उन नियमों का पालन नहीं करना जो सभी न्यायिक प्रक्रियाओं की अनुमति देते हैं जिसके परिणामस्वरूप कार्यवाही "न्यायिक प्रक्रिया" शब्द के उचित अर्थ में नहीं होती है।

---

[2]ब्रायन फ्रॉस्ट, न्याय, प्रकृति, स्रोत और उपचार की त्रुटियां (कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004) 3।

[3]एआईआर 1 9 47 पीसी 19।

न्यायालय ने दो परिदृश्यों का विशिष्ट रुप से रेखांकित किया है: पहला, जहां कानून या प्रक्रिया का उल्लंघन कानून के इस तरह की गलत प्रस्तापना में हुआ हो कि यदि उस प्रस्तापना को सही कर दिया जाए तो की गई जांचं सही साबित न हो सके; और दूसरा कानून के ऐसे सिद्धान्तों या प्रक्रियाओं की उपेक्षा कर दी जाए जिसके कारण वही समान प्रभाव पडे।[4]

1.4 वर्षों से, "न्याय की हत्या" अभिव्यक्ति को न्यायिक फैसलों में बड़ी संख्या में देखा गया है, जिसमें इसके दायेर में नियमों का उल्लंघन और उन्हें अपवित्र करने के उदाहरण बहुसंख्या में शामिल हैं।न्याय की हत्या कानून की गलत अवधारणा, प्रक्रिया कीअनियमितता, उचित सावधानी की उपेक्षा से उत्पन्न होता है जो व्यवहार की स्पष्ट कठोरता या किसी विशेष व्यक्तियों के लिए कुछ अनावश्यक कठोरता का कारण बनते हैं।

1.5 अयोध्या दुबे एवं अन्य बनाम राम सुमर सिंह[6] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि न्यायिक दृष्टिकोण की कमी, बुद्धिमता का उपयोग न करना, भौतिक साक्ष्यों पर दोषपूर्ण तर्क या असंगत तर्कों के साथ विचार-विमर्श या अनुचित विचार करना जैसे दुराग्रह केसमतुल्य है वही न्याय की गंभीर हत्या के भी समतुल्य है।

1.6 प्रक्रिया में एक सुस्पष्ट दोष या कानून के बिंदु पर एक स्पष्ट त्रुटि जिसका परिणाम न्याय की घोर हत्या है।[7] यदि कोई फैसला अनुचित है तो कानून की गलती समझते हुए औरमामले के तथ्यों के आधार पर, यह कानून की हत्या कहलाता है। यदि किसी न्यायालय का दृष्टिकोण सबूत से निपटने के मामले में पूरी तरह से अवैध पाया जाता है, रिकॉर्ड की जांचं को सुरक्षित रखा जाता है, और निष्कर्ष रिकॉर्ड किये गये सबूत के विपरीत निकलता है, इस के कारण न्याय की हत्या हो जाती है।[8]

---

[4]यह भी देखें: श्रीनिवास राम कुमार बनाम महाबीर प्रसाद एवं अन्य, एआईआर 1951 एससी 177; तथा भारतीय संघ बनाम इब्राहिम उदीन एवं अन्य, (2012) 8 एससीसी 148।

[5] जनता दल बनाम एच एस चौधरी एवं अन्य, एआईआर 1993 एससी 892; यह भी देखें: टी एन ढक्कल बनाम जेम्स बेसनेट एवं अन्य (2001) 10 एससीसी 41 9।

[6] एआईआर 1981 एससी 1415।

[7]के. चिन्नास्वामी रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1962 एससी 1788।

[8] पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, एआईआर 2013 एससी 3368; अबरार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2011 एससी 354; रुकिया बेगम बनाम कर्नाटक राज्य, एआईआर 2011 एससी 1585; और मध्य प्रदेश बनाम दल सिंह और अन्य, एआईआर 2013 एससी 2059 यह भी देखें।

1.7 न्याय के नैसर्गिक सिद्धांत की अवेहलना करने पर आरोपी को विशेष परिस्थिति की व्याख्या करने से वंचित कर सकती है। अन्यायपूर्ण तरीके से आवश्यक सबूतों को प्रस्तुत करने से रोकने पर आरोपी के विरुद्ध पूर्वाग्रह उत्पन्न हो सकता है जो कि न्याय की विफलता में परिवर्तित हो सकती है। पूर्वाग्रह के कारण मूल अर्थ की व्याख्या नहीं हो पाती है। अभिव्यक्ति न्याय की विफलता एक अत्यंत वलन या स्पष्ट अभिव्यक्ति है, जोकिसी मामले की किसी भी स्थिति में उपयुक्त होने के लिए बनाया जा सकता है।[9]

1.8 न्याय की हत्या दोषपूर्ण एवं झूठे साक्ष्य को मान लेने से होती है।[10] रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश[11] के मामले में अदालत ने एक रिहाई आदेश को उलटते हुए कहा कि निचली अदालत द्वारा "महत्वहीन विसंगतियों और असंगतियों" को आवश्यकता से अधिक महत्व देना न्याय की हत्या के समान है और इसे रोकना उस से भी अधिक महत्वपूर्ण है।[12]

1.9 ये न्यायिक मामले "न्याय की हत्या" अभिव्यक्ति के व्यापक दृष्टिकोण पर चर्चा करती हैं, परन्तु इस रिपोर्ट में जो न्याय की हत्या का सन्दर्भ लिया गया है वह अनुचित या विद्वेषपूर्ण अभियोग चलाने से है चाहे ऐसे मामलों में किसी भी न्यायालय के द्वारा सजा सुनाई जा चुकी हो या नहीं और चाहे ऐसे मामलों में कैद की सजा दी गई हो या नहीं। ये वे मामले हैं जिनमे आरोपी अपराधी नहीं था या उसकी गलती नहीं थी फिर भी पुलिस और/या अभियोजन पक्ष ने उसके विरुद्ध दुर्व्यवहार के रुप में जांच और/या अभियोजन में उलझाए रखा।

---

[9]नागेश्वर श्री कृष्णा घोबे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1973 एससी 165; शमनसाहेब एम. मुल्तानी बनाम कर्नाटक राज्य, एआईआर 2001 एससी 921; राज्य बनाम टी.वेंकटेश मूर्ति, एआईआर 2004 एससी 5117; प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2007 एससी 1274; रत्तीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2012 एससी 1485; भीमन्ना बनाम कर्नाटक राज्य, एआईआर 2012 एससी 3026; और दरबारा सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2013 एससी 840)।

[10] उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नवाब सिंह, एआईआर 2004 एससी 1511; उत्तर प्रदेश राज्यबनाम प्रेमी, एआईआर 2003 एससी 1750; और बैंगलोर सिटी कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, एआईआर 2012 एससी 1395।

[11]एआईआर 2012 एससी 979

ग. विधि आयोग की पिक्षली रिपोर्टें

(i) 'अपकृत्य पर राज्य की जिम्मेवारी' प्रथम रिपोर्ट (1956)

1.10 आयोग ने नागरिकों के द्वारा अपकृत्य के आधार पर संघ और राज्यों पर किये जाने वाले दावों के संबंध में विशेष कानून पर विचार विमर्श किया है तथा यदि ऐसा है तो किस सीमा तक राज्यों की जिम्मेवारी है। इस संबंध में एक उपयुक्त कानून को लागू करने के लिए यह अनुशंसा की जाती है कि सरकार की अपकृत्य जिम्मेदारियों को यह कहते हुए परिभाषित किया जाए "यह आवश्यक है कि जहां तक संभव हो सके कानून को स्पष्ट एवं निश्चित बनाया जाए।"राज्य की अपकृत्यों के लिए दायित्व निमार्ण करने की सीमा तक इस कानून को बनाया जाना चाहिए, आयोग यह अनुशंसा करता है कि इस विषय में "नि:सन्देह, एक सर्वश्रेष्ठ संतुलन की आवश्यकता है ताकि इसके कारण राज्य के कार्यक्षेत्र में अनावश्यक रुकावट उत्पन्न नहीं हो और साथ ही नागरिकों को पर्याप्त सुरक्षा मिल सके।"

1.11 आयोग ने राज्यों के अधिकारियों की अपकृत्यों के लिए उन्मुक्ति पर भी विचार किया है तथा यह अनुशंसा की है कि राज्य उन्मुक्ति के नियम में शिथिलता दी जानी चाहिए और "संप्रभु और गैर-संप्रभु कार्यों के बीच पुराना भेद अब राज्य की जिम्मेदारी निर्धारित करने के लिए अभिमंत्रित नहीं किया जाना चाहिए।

(ii) जेलों अभियोगाधीन कैदियों की बढती संख्या पर 78वीं रिपोर्ट (1979)

1.12 आयोग ने अपनी इस रिपोर्ट में जेलों अभियोगाधीन कैदियों की बढती संख्या के विषय पर अपने विचार रखे थे और इस से निपटने के लिए कानूनी सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया था। आयोग ने यह बताया था कि जेलों का उपयोग मुख्यत: सजायहाफ्ता कैदियों को रखने के लिए किया जाना चाहिए न कि अभियोगाधीन कैदियों को रखने के लिए। आयोग ने यह अनुशंसा की थी कि कैदियों की दो प्रकार की श्रेणियां अलग अलग बनाई जानी चाहिए। अभियोगाधीन कैदियों को रखने के लिए अलग संस्थान होना चाहिए। इस रिपोर्ट में केसों कोजल्द निपटाने पर अन्य अनुशंसाएं भी समाहित थीं (निचली अदालतों में देरी एवं बकाया); बॉन्ड की राशि; बिना किसी जमानत के बॉन्ड को जारी करना इत्यादि।

---

[12] अलाराखा के मंसुरी बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 2002 एससी 1051, उच्चतम न्यायालयने कहा है कि जहां मामले की सुनवाई कानूनी साक्ष्यों के आधार पर न होकर अदालत के अनुमानों एवं अटकलों के आधार पर की गई है तो यह अपीलीय अदालत की जिम्मेवारी बनती है कि वह मामले की सुनवाई के दौरान अपील में सबूत पर पुर्नविचार करे कि क्या अभियुक्त ने कोई अपराध किया है या नहीं। यह भी देखें: राजस्थान राज्य बनाम शेरा राम, एआईआर 2012 एससी 1

(iii) 'पुलिस अभिरक्षा में क्षति' पर 113वीं रिपोर्ट (1985)

1.13 एक पुलिस अधिकारी जिस पर किसी व्यक्ति को हिरासत में शारीरिक चोट पहुंचाने का आरोप था के अभियोजन पक्ष पर साक्ष्यों को प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी के मुद्दे पर आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इस में भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में धारा 114 बी के सम्मिलनकी सिफारिश की गई थी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पुलिस अधिकारी के अभियोजन के उपरोक्त मामलों में, यह सबूत हो कि व्यक्ति को जो चोट लगी है वह पुलिस हिरासत के दौरान लगी हैं तो न्यायालय यह मान सकता है कि पुलिस हिरासत के दौरान पुलिस अधिकारी के द्वारा उस व्यक्ति को ये चोटें पहुंचाई गई हैं।

1.14 आयोग ने अपनी अनुशंसाएं करते हुए आगे कहा है कि उक्त मामले में परिकल्पना के प्रश्न पर विचार करते हुए सभी प्रासंगिक परिस्थितियों जैसे हिरासत की अवधि, पीडित के बयान, चिकित्सकीय सबूतऔर वे सबूत जिन्हें मजिस्ट्रेट रिकॉर्ड कर सकते हैं को शामिल कर विचार किया जाना चाहिए। रिपोर्ट में हिरासत के दौरान हिंसा और प्रताडना से संबंधित अपराधों में सबूत पेश करने की जिम्मेदारी को भी हटाने की भी अनुशंसा की गई है।

(iv)'अभिरक्षण संबंधी अपराध' पर 152वीं रिपोर्ट (1994)

1.15 आयोग ने अपनी इस रिपोर्ट में पुलिस अधिकारियों द्वारा शक्ति का दुरुपयोग और गिरफ्तारी के विषय पर अपनी अनुशंसाएं प्रस्तुत की थी। संबंधित संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों को सन्दर्भित करते हुए यह रिपोर्ट इस विषय सा◌ामग्री पर कई संसोधनों की अनुशंसा करती है। इन संसोधनों में से एक अनुसंशित संसोधन भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - के खण्ड 114बी का सम्मिलन अन्तर्वेश (जैसा कि 113वीं रिपोर्ट में अनुशंसित किया गया था) करना था। यहां पर जो अनुशंसाएं की गई हैं वे यह भी सुझाव देती हैं कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 में धारा 41(1क) को गिरफ्तार करने के कारण को रिकॉर्ड करना तथा धारा 50क को नामांकित व्यक्ति को गिरफ्तार की सूचना देने के लिए अन्य के साथ साथ जोडा जाना चाहिए।

(V) 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973' पर 155वीं रिपोर्ट (1996)

1.16 आयोग ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 का विस्तार से परीक्षण किया ताकि आपराधिक केसों को समाप्त करने में होने वाली अनुवर्ती देरी की मूल तात्विक समस्या

को समाप्त किया जा सके। यह संहिता, 1973, पुलिस अधिनियम में अन्य के साथ संसोधन करने सहित व्यापक अनुशंसाएं करती है। जिनमें से एक अनुशंसा यह थी कि जांच करने वाली पुलिस को कानून व्यवस्था बनाए रखने वाली पुलिस से अलग किया जाए;अन्य विषयों के साथ साथ जांच करने वाली पुलिस की विशेषज्ञता में वृद्दि की जाए। जांचों को अधिक कार्यदक्ष बनाया जाए ताकि अन्यायपूर्ण और निराधार अभियोगों की संभावना को कम किया जा सके। जांच करने वाले पुलिस बल को उच्चाधिकारियों के पर्यवेक्षण में रखा जाना चाहिए।

(VI)'भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872' पर 185वीं रिपोर्ट (2003)

1.17 आयोग ने 1872 के अधिनियम की समीक्षा करते समय एक बार पुन: धारा 114बी पर विचार किया (जैसा कि 113वीं रिपोर्ट में अनुशंसित किया गया था तथा 152वीं रिपोर्ट में दुहराया गया)। 1872 के अधिनियम की अन्य धाराओं में संसोधनों की अनुशंसा के साथ साथ आयोग ने धारा 114बी के संबंध में की गई अनुशंसाओं में 'पुलिस अधिकारी' शब्द को अर्थ प्रदान करने के लिए इस धारा के उद्देश्य से एक सुधार दोहराया। उक्त अनुशंसा 'पुलिस अधिकारी'शब्दमें "अर्धसैनिक बलों एवं राजस्व विभाग के अन्य अधिकारियों को भी शामिल करने के लिए की गई थी जो कि आर्थिक अपराधों के संबंध में जांच करते हैं।"

(VII) संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलन के तहत याताना एवं अन्य निर्दयी, अमानवीय, और अपमानजनक व्यवहार या दण्ड के समझौते को विधान के माध्यम से क्रियान्वयन (2017) करने पर 273वीं रिपोर्ट

1.18 इस रिपोर्ट में आयोग ने विभिन्न विषयों पर विचार करते हुए कई अनुशंसाएं की थीं। इनमें से एक अनुशंसा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 बी के अर्न्तप्रवेश के संबंध में 113वीं, 152वीं और 185वीं रिपोर्टों में व्यक्त विचारों का समर्थन करना था। आयोग ने यह महसूस किया कि यह प्रावधान किसी व्यक्ति के पुलिस हिरासत के दौरान चोटिल होने पर न्यायालय के द्वारा मान लिया जाएगा कि ये चोटें पुलिस के द्वारा पहुंचाई गई हैं और यह संबंधित पुलिस अधिकारी की जिम्मेवारी होगी कि वह यह साबित करे कि ये चोटें अपराधी को कैसे लगीं।

घ. वर्तमान रिपोर्ट

1.19 आयोग ने इस सन्दर्भ के आधार पर इस विषय में एक वृहद अनुसंधान किया और विभिन्न क्षेत्रों के भागीदारों जैसे पुलिस, वकील, न्यायिक अधिकारियों, एवं अन्य से न्याय की हत्या जिसके परिणामस्वरुप अनुचित अभियोग, कैद और/या सजा के मामलों पर सलाह-मशविरा किया। प्राप्त की गई रिपोर्टों और सुझाव के आधार पर व्यापक विचार-विमर्श, चर्चा, और गहराई से अध्ययन करने के पश्चात आयोग ने यह रिपोर्ट तैयार की है।

1.20 यह रिपोर्ट उपरोक्त उल्लेखित न्याय की हत्या पर अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य को संबोधित करती है; वर्तमान परिदृश्य पर गहन शोध करने के बाद - वर्तमान कानूनों में उपलब्ध उपचारों -भारतीय सन्दर्भ में न्याय की हत्या के मानकों की पहचान करते हुए; और इस मुद्दे को हल करने के लिए कानूनी ढांचे के संदर्भ में आयोग की सिफारिशों के साथ निष्कर्ष निकाला गया है।

अध्याय - 2

आंकडे एवं विश्लेषण

2.1 राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड्स ब्यूरो (एनसीआरबी) की वार्षिक सांख्यिकीय रिपोर्ट " भारतीय जेल सांख्यिकी" (पीएसआई) नामक जेलों, कैदियों और जेल के बुनियादी ढांचे के संबंध में जानकारी प्रस्तुत करती है। पीएसआई 2015[13] के अनुसार पूरे भारत में 4,19, 623 कैदी थे[14];जिनमें से 67.2% यानी कि 2,82,076 अभियोगाधीन कैदी थे(यानी जो लोग सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच या परीक्षण के लिए लंबित न्यायिक हिरासत में हैं)[15] दोषी आबादी की तुलना में यह संख्या काफी अधिक है यानी 1,34,168 (32.0%):

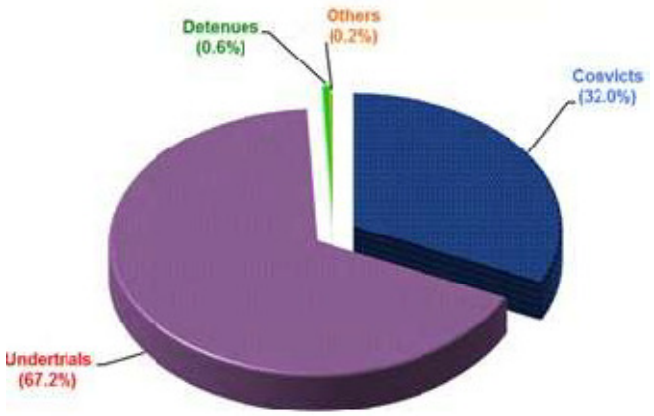

2.2 पीएसआई के आंकड़ों की एक समीक्षा से पता चलता है कि देश भर में और साथ ही राज्यों में, अभियुक्त कैदियों की संख्या दोषी कैदियों की तुलना में अधिक है।राज्यों के उच्चतम प्रतिशत वाले विचाराधीन कैदियों वाले राज्य मेघालय - 91.4%, बिहार - 82.4%, मणिपुर -81.9%, जम्मू-कश्मीर -81.5%, नागालैंड - 79.6%, ओडिशा - 78.8%, झारखंड 77.1% और दिल्ली - 76.7% . थे।[16]

---

[13] गृह मंत्रालय, उपलब्ध राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड्स ब्यूरो, भारतीय जेल सांख्यिकी - 2015 (सितंबर 2016) । Http://ncrb.gov.in/statpublications/psi/Prison2015/Full/PSI-2015-%2018-11-2016.pdf। (अंतिम पहुंच: 10 अगस्त 2018)

[14] केंद्रीय जेल; जिला जेल; उप जेल; महिला जेल; खुली जेल; बोरस्टल स्कूल; विशेष जेल; और अन्य जेल, इबिड।

[15]राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड्स ब्यूरो, जेल सांख्यिकी भारत - 2015, सुप्रा।

[16]आईबिद

अभियोगाधीन कैदियों का प्रतिशत (कैदियों की कुल संख्या में)2005 - 2015 के पिछले दशक में निरंतर उच्च रहा है:

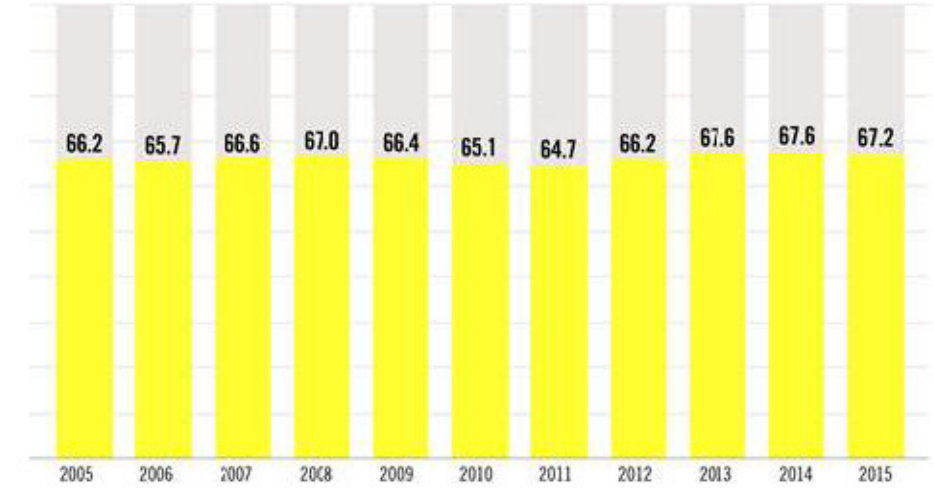

Source: National Crime Records Bureau

2.3 राज्यवार आंकड़ों के मुताबिक, वर्ष 2015 के अंत में देश भर में विभिन्न जेलों में अभियोगाधीन कैदियों की अधिकतम संख्या उत्तर प्रदेश से 62,669 दर्ज की गई, इसके बाद बिहार - 23,424 फिर महाराष्ट्र - 21,667, मध्य प्रदेश - 21,300, पश्चिम बंगाल - 15,342, राजस्थान - 14,225, झारखंड - 13,588, पंजाब - 13,046, ओडिशा - 12,584, दिल्ली -10,879 और हरियाणा -10,489 का स्थान आता है।

2.4 न्याय की हत्या के मुद्दे के संबंध में विचार करते समय अभियोगाधीन कैदियों की कैद की अवधि को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। आंकड़े बताते हैं कि कुल अभियोगाधीन कैदियों में से 25.1% (70,616) ने एक वर्ष से अधिक का समय जेल में व्यतीत किया है; और 17.8% (50,176) कैदी जेल में 1 साल तक समय व्यतीत करते हैं, 21.9% (61,886) अभियोगाधीन कैदी 3 से 6 महीने के लिए जेल में थे, और 35.2% (99,398) अभियोगाधीन कैदियों ने जेल में 3 महीने तक बिताए थे।

अभियोगाधीन कैदियों की "हिरासत की अवधि" का पूरा प्रतिशत अलग अलग निम्नानुसार है:

2.5 यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि जारी आंकडों के अनुसार जो यह दर्शाते हैं कि वर्ष 2015 के दौरान 82,585 कैदियों को निर्दोष रिहा कर दिया गया था, और 23,442 कैदियों को अपील में रिहा कर दिया गया था।

2.6 इसके अलावा, वर्ष 2016 के दौरान, एनसीआरबी द्वारा संकलित जानकारी के अनुसार (गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री श्री हंसराज गंगाराम अहिर द्वारा राज्यसभा में अतारांकित प्रश्न संख्या 550) के जवाब में उद्धृत, अभियोगाधीन कैदियों की संख्या 10,000 से अधिक (2015 से) की वृद्धि हुई है और यह संख्या 2,93,058 दर्ज की गई है; जबकि अभियुक्तों की संख्या में मात्र 1000 से अधिक की वृद्धि हुई और यह संख्या 1,35,683 पर दर्ज की गई।[18]

2.7 एक अंतरराष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार उपरोक्त 67.2% के साथ भारत में सबसे ज्यादा जनसंख्यां में अभियोगाधाीन कैदी हैं।[19]

---

[17]राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड्स ब्यूरो, जेल सांख्यिकी भारत - 2015, सुप्रा।

[18]https://mha.gov.in/MHA1/Par2017/pdfs/par2018-pdfs/rs-07022018- ENG / 550.pdfपर उपलब्ध। (अंतिम बार 12 अगस्त 2018 को देखा गया)।

[19]"उच्चतम से निम्मतम - पूर्व अभियोगाधीन कैदियों/रिमांड कैदियों"। विश्व जेल संक्षिप्त, आपराधिक नीति अनुसंधान संस्थान पर उपलब्ध: http://www.prisonstudies.org/highest-to-lowest/pre-trialdetainees field_region taxonomy_tid = सभी। (अंतिम बार:12 अगस्त 2018 को देखा गया)। यह भी देखें: एमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया, जस्टिस अंडर ट्रायल: भारत में प्री-ट्रायल डिटेन्शन का एक अध्ययन

यह दुनिया में 16 वें स्थान पर है (कुल 217 देशों में से);[20] और एशिया में पाकिस्तान, कंबोडिया, फिलीपींस और बांग्लादेश के बाद पांचवां सबसे अधिक।[21]

2.8 साल दर साल इस तरह की बड़ी संख्या में अभियोगाधी कैदी (अभियुक्तों की संख्या से अधिक) और उनकी लंबी हिरासत अवधि से यह पता चलता है कि अभियोगाधीन कैदियों ने अपने मामले के परीक्षण / न्यायिक निरुपण के इंतजार में पर्याप्त समय बिताया है।यह देरी और इंतजार न्याय की हत्या का गंभीर कारण बन जाते हैं जब व्यक्ति पर अनुचित तरीके से आरोप लगाए जाते हैं और लंबित विचाराधीन / कार्यवाहियों के लिए कैद में डाल दिया जाता है जिसके लिए उसे उस स्थान पर नहीं होना चाहिए था।

2.9 हालांकि आंकडें विशेष रूप से अनुचित तरीके से कैद या अनुचित तरीके से अभियोजित या आरोपित व्यक्तियों की संख्या को निर्दिष्ट नहीं करता है;फिर भी, ये संख्याओं, इस मुद्दे के महत्व पर प्रकाश डालती हैं और व्यवस्था से पीड़ित लोगों को राहत प्रदान करने के लिए एक वैधानिक उपायों की तत्काल आवश्यकता पर बल देते हैं।

2.10 उच्चतम न्यायालय ने इस भयानक स्थिति को में ध्यान में रखते हुए, आरोपी व्यक्तियों को अन्यायपूर्ण रुप से जेलों में समय विशेष के लिए बन्द करने पर दु: ख प्रकट किया है।थाना सिंह बनाम नारकोटिक्स सेंट्रल ब्यूरो[22]के मामले में, अवलोकन करते हुए कहा है कि: जिस लापरवाही से हम नागरिकों को जेल में डालते हैं, यह हमारी कैद की कष्टों के प्रति असंवेदना दर्शाता है; जिस निर्दयता से हम उन्हें छोड़ देते हैं, वह हमारे मानवता के प्रति सम्मान की कमी को दर्शाता है। कैदियों की बढती संख्या हमारी ना समझी को भी दर्शाता है। कैदी के स्वंय के लिए भीअभियोगाधीन होने पर कारावास और एक अपराध के लिए सजा पर कारावास दोनों में कोई अन्तर नहीं होता है क्योंकि समाज की घातक उंगली और अपमानजनक आंखें दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं करती हैं ...।

---

[20]विश्व जेल संक्षिप्त, आपराधिक नीति अनुसंधान संस्थान, "उच्चतम से निम्नतम- पूर्व परीक्षण बंदियों/रिमांड कैदियों"। पर उपलब्ध: http://www.prisonstudies.org/highest-to-lowest/pre-trialdetainees field_region_taxonomy_tid = सभी

[21]कुल 28 प्रविष्टियों में। "आपराधिक नीति अनुसंधान संस्थान," उच्चतम से निम्नतम- पूर्व परीक्षण बंदियों / रिमांड कैदियों"। विश्व जेल संक्षिप्त। यहां उपलब्ध है: http://www.prisonstudies.org/highest-to-lowest/pre-trialdetainees?field_region_taxonomy_tid = 16। (अंतिम बार: 12 अगस्त 2018 को देखा गया)।

[22](2013) 2 एससीसी 590. यह भी देखें: हुसैनारा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना, एआईआर 1979 एससी 1369; सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सहायता समिति अभियोगाधीन कैदी बनाम संघ और अन्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। (1994) 6 एससीसी 731।

अध्याय - 3

अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य

क. नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा

3.1नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 ("आईसीसीपीआर") न्याय की हत्या पर प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों में से एक है।आईसीसीपीआर न्याय की हत्या के मामलों में राज्य के दायित्व पर चर्चा करता है जिसके परिणामस्वरूप अनुचित कैद होती है।इसके लिए राज्य को उस व्यक्ति को क्षतिपूर्ति देनी होती है जिसको गलतफहमी के कारण दंड दिया गया हो, बशर्ते कि सजा अंतिम हो, और बाद में उस निर्णय को न्याय की हत्या के आधार पर पलट दिया गया हो या माफ़ कर दिया गया हो अर्थात एक नया तथ्य यह साबित करे कि अभियुक्त वास्तव में निर्दोष था। आईसीसीपीआर की धारा 14(6) कहती है:

> जब किसी व्यक्ति को **अंतिम निर्णय के माध्यम से आपराधिक अपराध का दोषी पाया जाता है और उसके बाद फैसले को पलट दिया गया हो** या उसे इस आधार पर माफ़ कर दिया गया है कि एक नये या नये खोजे गये तथ्य के आधार पर निश्चित रूप से यह साबित हो जाए **कि न्याय की हत्या हुई है, ऐसे व्यक्ति को ऐसे फैसले के परिणामस्वरूप दंड का सामना करना पड़ा हो तो उसे कानून के अनुसार मुआवजा दिया जाएगा,**जब तक यह साबित नहीं हो जाता कि समय में अज्ञात तथ्य का खुलासा पूरी तरह से या आंशिक रूप से उसके लिए जिम्मेदार है। (जोर देते हुए कहा)

अनुच्छेद 9(5) के अनुसार:

कोई भी व्यक्ति जिसे अन्यायपूर्ण तरीके से गिरफ्तार या कैद में रखा गया है, के पास क्षतिपूर्ति का प्रर्वतनीय अधिकार होगा।

3.2 संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति[23] ने आईसीसीपीआर के अनुच्छेद 14 पर अपनी सामान्य टिप्पणी संख्या 32 (2007) में विस्तार से चर्चा की। "न्याय की हत्या" के मामलों में राज्य के दायित्वों की व्याख्या करने में, यह आवश्यक है:

---

[23]संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति संयुक्त राष्ट्रनिकाय है जिसकी आईसीसीपीआर की व्याख्या को आधिकारिक माना जाता है।

52.....**यह आवश्यक है कि राज्य ऐसे कानून बनाकर यह सुनिश्चित करें कि इस प्रावधान द्वारा आवश्यक क्षतिपूर्ति को वास्तव में भुगतान किया जा सके और भुगतान उचित समय के अन्दर किया जा सके।**

53. यह गारंटी तब लागू नहीं होती है जब यह साबित होजाए कि अच्छे समय में इस तरह के भौतिक तथ्य का खुलासा अभियुक्त को पूरी तरह से या आंशिक रूप से जिम्मेदार ठहराता है; इस तरह के मामलों में साक्ष्य प्रस्तुत करने की जिम्मेवारी राज्य की होगी। इसके अलावा, यदि अगर अपील पर सजा को रद्द कर दिया जाता है यानि अन्तिम निर्णय होने से पहले तो कोई भी मुआवजा नहीं दिया जाएगा।[24]

यामानवता या स्वनिर्णय की प्रकृति के आधार पर या न्यायसम्यता के विचार से प्रेरित होकर दोषमुक्त करने पर यह नहीं माना जाना चाहिए कि न्याय की हत्या हुई है।[25](जोर देते हुए कहा)

3.3 आईसीसीपीआर और उपरोक्त सन्दर्भित सामान्य टिप्पणी एक साथ एक ऐसे विधायी तन्त्र की आवश्यकता पर बल देता है जिस से कि अनुचित तरीके से सजाहाफ्ता लोगों को क्षतिपूर्ति एक "उचित अवधि" में प्रदान की जा सके।

3.4 भारत सहित कुल 168 देशों ने आईसीसीपीआर को अंगीकार किया है। हालांकि, सभी देशों ने अपने वचन को कानून के रुप में परिवर्तित नहीं किया है। राज्यों ने अपने दायित्व को धारा 14(6) के तहत एक या उससे अधिक तरीकों से पूरा किया है: धारा का संयोजन (या धारा को अलग शब्दों में व्यक्त करना) क्षतिपूर्ति के वैधानिक अधिकार का निर्माण करने के लिए अनुच्छेद को घरेलू कानून में परिवर्तित करना; क्षतिपूर्ति का भुगतान के निर्धारण के लिए एक प्रशासनिक या न्यायिक निकाय को विवेकाधिकार प्रदान करना; या घरेलू सरकार की सामान्य शक्तियों का अनुग्रहपूर्वक भुगतान के लिए उपयोग करना।

3.5 इन राज्यों ने अनुचित तरीके से सजायहाफ्ता पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए आर्थिक और / या गैर आर्थिक सहायता प्रदान कर न्याय की हत्या का समाधान करने के लिए कानूनी तंत्र का विकास किया है।

---

[24]संवाद संख्या 880/1999; इरविंग बनाम ऑस्ट्रेलिया, पैरा 84; संख्या 868/1999, विल्सन बनाम फिलीपींस, पैरा 6.6।, सामान्य टिप्पणियां 32, संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति में उद्धृत किया गया।

[25]संचार संख्या 89/1981; मुहोनन बनाम फिनलैंड, पैरा 11.2 उक्त

इस तंत्र से उक्त पीडितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए राज्य की जिम्मेवारी स्थापित होती है और इस जिम्मेवारी को और अधिक प्रभावी बनाने के अन्य वास्तविक और प्रक्रियात्मक पहलुओं को भी प्रस्तुत किया जाता है - क्षतिपूर्ति की मात्रा - कुछ मामलों में अधिकतम और न्यूनतम सीमा - क्षतिपूर्ति के अधिकार को निर्धारित करते समय विभिन्न पहलुओं जैसे राशि का आकलन, दावा प्रक्रिया, संस्थान स्थापना इत्यादि पर विचार किया जाता है। इस अध्याय का निम्न खण्ड इनमें से कुछ कानूनी तंत्र की प्रमुख विशेषताओं पर गहराई से प्रकाश डालता है।

ख. यूनाईटेड किंगडम

(i) <u>आपराधिक न्याय अधिनियम, 1988</u>

3.6 आईसीसीपीआर के तहत अन्तरराष्ट्रीय बाध्यता के अनुरुप यूनाईटेड किंगडम ने अनुच्छेद 14(6) के उपरोक्त प्रावधानों को अपने घरेलू कानून, आपराधिक न्याय अधिनियम 1988 में भाग XI के तहत उपरोक्त "न्याय की हत्या", खंड 133, 133ए, 133बी के तहत उपरोक्त प्रावधान शामिल किये हैं।

3.7 उक्त खण्ड विधायी तंत्र तैयार करता है जिसके तहत राज्य सचिव, निर्दिष्ट शर्तों के अधीन, और आवेदन प्राप्त होने पर, उस व्यक्ति को क्षतिपूर्ति का भुगतान करेगें जिसे अनुचित तरीके से सजा दी गई हो, जिसे न्याय की हत्या के आधार पर माफ कर दिया गया हो या उसकी सजा हटा दी गई हो - जहां एक नया तथ्य सामने आया हो जो यह साबित करता हो कि व्यक्ति ने संदेह से परे वह अपराध नहीं किया था। यह क्षतिपूर्ति की राशि का आकलन करते समय अन्य कारणों पर भी विचार करने के लिए उपलब्ध करवाता है जैसे प्रतिष्ठा या इस प्रकार का समान नुकसान, अपराध की गंभीरता, सजा की गंभीरता, जांच प्रक्रिया और अपराध के अभियोजन। क्षतिपूर्ति की राशि के संबंध में उक्त धाराएं सम्पूर्ण रुप से क्षतिपूर्ती की सीमाएं निर्धारित करती हैं (कैद की अवधि के आधार पर विभेद करती हैं जैसे दस वर्ष से कम या दस वर्ष से अधिक)।[26]

3.8 2011 से पहले, इस कानून के तहत क्षतिपूर्ति की पात्रता के लिये यह आवश्यक था कि दावेदार को दोषमुक्त कर दिया जाए और कानूनी तकनीकीताओं या "उचित संदेह से परे" कम साक्ष्य के आधार पर बरी नहीं किया जाए। हालांकि, 2011 में आर. के केस के आधार पर

---

[26]अधिनियम के तहत दावे को दाखिल करने के लिए समय सीमा भी है, यानी उस तारीख से 2 साल की अवधि के अंत से पहले जिस तारीख से संबंधित व्यक्ति की सजा को पलट दिया गया है या उसे क्षमा किया गया है (धारा 133) ।

(एडम के आवेदन पर) बनाम न्याय राज्य सचिव[27] के मामले में यूके उच्चतम न्यायालय ने न्याय की हत्या और निर्दोषता की अवधारणा की परिभाषा को वृहद किया है; अधिकतर फैसलें यह बताते हैं कि निर्णायत्मक निर्दोषता के लिए आवश्यक शर्तें सीमित हैं और कहा कि यहां तक कि जो लोग अपनी निर्दोषता को संदेह से परे साबित नहीं कर सकते हैं वे भी क्षतिपूर्ति के हकदार हैं; आगे कहा कि :

निर्दोषता ऐसी कोई अवधारणा नहीं है जो हमारे आपराधिक न्याय प्रणाली के लिए जानी जाती है। हम दोषी और निर्दोष के बीच में विभेद करते हैं। एक व्यक्ति तभी दोषी होता है जब राज्य उसका दोष संदेह से परे जाकर साबित कर सकता हो..... यदि निर्णायक रुप से यह प्रतीत हो सकता है कि राज्य उस व्यक्ति को सजा देने का हकदार नहीं है, तो मुझे ऐसा लगता है कि वह व्यक्ति सजा पाने के एवज में क्षतिपूर्ति का हकदार है।उसे अपनीनिर्दोषता सुनवाई के दौरान साबित करने की आवश्यकता नहीं है और यह सिद्धान्तों में गलत प्रतीत होती कि उसे अपनी निर्दोषता अब साबित करनी पडे।

(ii) <u>आपराधिक मुकद्दमा समीक्षा आयोग (सीसीआरसी)</u>

3.9 यूके में एक समीक्षा आयोग भी है जिसका काम समर्पित रुप से केवल यह देखना है कि क्या कोई व्यक्ति न्याय की हत्या से पीडित तो नहीं है। मार्च, 1997 में आपराधिक मुकद्दमा समीक्षा आयोग (सीसीआरसी) स्थापना की गई थी। इसका कार्य इंग्लेण्ड, वेल्स और उत्तरी आयरलैण्ड के आपराधिक न्यायालयों के मामलों की समीक्षा कर न्याय की हत्या की संभावना का पता लगाना है और उपयुक्त केस को अपीलीय न्यायालय में समीक्षा के लिए सन्दर्भित करना है।

3.10 सीसीआरसी एक ऐसा मंच है जहां जो लोग यह महसूस करते हैं कि उन्हें अनुचित तरीके से सजा या अभियोगाधीन रखा गया है वे अपने केस की समीक्षा करवाने के लिए आवेदन कर सकते हैं। यह किसी भी केस से संबंधित सूचना या जानकारी एकत्रित कर सकता है और यह अपनी स्ंवय की जांच भी कर सकता है। एक बार यह प्रक्रिया पूर्ण होने पर सीसीआरसी यह निर्णय करता है कि क्या इस केस को उपयुक्त अपीलीय न्यायालय को आगे की समीक्षा के लिए भेजा जाए या नहीं।

(iii) <u>यूके पुलिस अधिनियम, 1996</u>

3.11 यूके पुलिस अधिनियम 1996 की धारा 88 भी उल्लेखनीय है जो कि 'कॉन्स्टेबलों के अनुचित कृत्यों की जवाबदेही' के बारे में चर्चा करता है। यह धारा उक्त केसों में उपचार और

---

[27] [2011] यूकेएससी 18।

प्रक्रिया को निर्धारित करता है। यह पुलिस के मुख्य अधिकारी को उनके कार्यों के प्रदर्शन में उनके निर्देशन और नियंत्रण के तहत कॉन्स्टेबल के किसी भी गैरकानूनी आचरण के संबंध में उत्तरदायी बनाता है; यह वैसे ही है जैसे कि एक मालिक अपनी नौकरी के दौरान अपने कर्मचारियों द्वारा किए गए अपकृत्यों के लिए उत्तरदायी होता है; और तद्नुसार यह अपकृत्य के केस में भी सभी उद्देश्यों के लिए संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रुप में माना जाता है। यह पुलिस फण्ड में से ऐसे मामलों में किसी भी प्रकार के नुकसान या राशि के समायोजन के लिए भुगतान भी उपलब्ध करवाता है।

3.12 हिल बनाम वेस्ट यॉर्कशायर के हेड कॉन्स्टेबल[28] के मामले में, हाऊस ऑव लॉर्डस ने कहा कि पुलिस ऑफीसर किसी विशेष जनता के सदस्य के प्रति अपने कर्तव्य के प्रति सतर्क नहीं थे क्योंकि एक खतरनाक अपराधी को गिरफ्तार करते समय लापरवाह व्यवहार के कारण उन्हें गंभीर रुप से चोट लग सकती थी। पुलिस की जांच में नीतियों और विवेक से संबधित विभिन्न निर्णय संसाधनों की तैनाती में प्राथमिकताओं सहित शामिल होते हैं। सावधानी के सामान्य कानून के कर्तव्य के लिए उन निर्णयों के विषय में, और अपकृत्य पर कार्रवाई के लिए एक प्रकार की न्यायिक जांच में शामिल विषय अनुचित थे।

3.13 ब्रुक्स बनाम मेट्रोपॉलिस के लिए पुलिस आयुक्त एवं अन्य[29] के मामले में हाऊस ऑव लॉर्डस् ने हिल बनाम वेस्ट यॉर्कशायर के हेड कॉन्स्टेबल(सुप्रा) के निर्णय का अनुमोदन करते हुए एक आवरण प्रतिरक्षा के बजाय देखभाल के कर्तव्य की अनुपस्थिति के संदर्भ में सिद्धांत को पुर्नस्थापित यह कहते हुए किया कि "नि:सन्देह यह पुलिस अधिकारियों से अपेक्षित है कि वे पीडितों और गवाहों के साथ उपयुक्त व्यवहार करें .....परन्तु इन नैतिक मूल्यों को संरक्षण के सामान्य कानूनी कर्तव्यों में परिवर्तित करना .....दूर की कौडी है। पुलिस का प्रमुख काम शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना है। हिल के मामले में सिद्धान्त से पीक्षे हटना कानून के प्रवर्तन के लिए हानिकारक होगा।"

3.14 राबिन्सन बनाम वेस्ट यॉर्कशायर पुलिस के मुख्य कॉन्सटेबल[30] के मामले में यूके उच्चतम न्यायालय ने पुलिस द्वारा संरक्षण के सामान्य कानूनी कर्तव्य के दायरे को समझाया जब उनकी गतिविधियों में आम जनता को क्षति का सामना करना पड़ता है। ऐसे केस को सामने आए हुए काफी समय बीत चुका है जब पुलिस के विरुद्ध कोई दावा लापरवाही में नहीं लाया जा सका हो, जहां किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा खतरा उत्पन्न किया गया हो,

---

[28] [1987] यूकेएचएल 12।

[29] [2005] यूकेएचएल 24।

[30] [2018] यूके एससी 4।

केवल ऐसे असमान्य परिस्थितियों के अलावा जहां जिम्मेदारी का आकलन किया गया हो। हालांकि यह मामला पुलिस की गतिविधियों के परिणामस्वरुप होने वाली क्षतियों पर केन्द्रित है जहां पर खतरा स्वंय उनके द्वारा उत्पन्न किया गया था। न्यायालय ने कहा कि पुलिस ने आम जन को ऐसी परिस्थिति में चोटों से बचाने के लिए कर्तव्य का संरक्षण किया था। न्यायालय ने पुलिस की सार्वजनिक कानूनी कर्तव्यों पर नोट लेने के दौरान आगे निजी कानूनी कर्तव्यों के संबंध में संज्ञान लिया:

यह पालन करती है कि यहां पर इस प्रकार का कोई नियम नहीं है जिस से कि अपराध को रोकने और जांचने के अपने कार्यों का निर्वहन करते समय पुलिस किसी भी संरक्षण कर्तव्य के तहत नहीं है। वे सामान्यत: अपने संरक्षण का कर्तव्य निभाते हैं जब लापरवाही के कानून के सामान्य सिद्धान्त के तहत इस प्रकार का कर्तव्य सामने आता है जब तक कि संविधि या सामान्य कानून अन्यथा प्रदान नहीं करता है। उन सिद्धान्तों को लागू करते हुए, वे संरक्षण के कर्तव्य के तहत किसी व्यक्ति को उस खतरे या चोट से बचा सकते हैं जिसे उन्होंने स्वंय उत्पन्न किया हो जिसमें मानव एजेंसी के परिणामस्वरूप चोट का खतरा भी शामिल है, जैसे कि डोरसेट यॉट और ब्रिटिश वर्जिन द्वीप समूह के अटॉर्नी जनरल बनाम हार्टवेल। उन समान सिद्धान्तों को लागू करते हुए, हालांकि सामान्यत: पुलिस चोट के खतरे से बचाने के लिए संरक्षण के कर्तव्य के तहत कार्य नहीं करती है, जिन को उन्होंने स्वयं उत्पन्न नहीं किया है जिसमें तीसरे पक्ष के कारण हुई चोटें भी शामिल हैं, विशेष परिस्थितियों के अभाव में इस प्रकार के मामले जिम्मेदारी की धारणा है।

ग. जर्मनी

3.15 जर्मनी में अनुचित सजा के परिणामस्वरुप न्याय की हत्या और अन्य विषय राज्य पर जिम्मेदारी (आधिकारिक जिम्मेदारी) डालते हैं और जिन लोगों को अनुचित तरीके से सजा दी गई है उन्हें क्षतिपूर्ति देने की जिम्मेदारी भी राज्य की होती है।

(i) ग्रुन्दगेसेत्ज़- संविधान

3.16 जर्मनी का संविधान [ग्रुन्दगेसेत्ज़ (जीजी)], 1949, को मूलभूत कानून के रुप में सन्दर्भित करते हुए धारा 34 में इस संबंध में प्राथमिक कानून निर्धारित किया है। 'आधिकारिक कर्तव्य के उल्लंघन करने पर जिम्मेदारी' नामक धारा कहती है:

यदि कोई व्यक्ति, उसे सौंपे गए सार्वजनिक पद का दुरुपयोग या अपने आधिकारिक कर्तव्यों का उल्लंघन किसी तीसरे पक्ष के संबंध में करता है तो सैद्धान्तिक रुप से मुख्य जिम्मेवारी राज्य या सार्वजनिक निकाय की होगी जिसे उसने नियोजित किया है। जानबूझकर गलत

काम या घोर लापरवाही की स्थिति में, अधिकारी विशेष के खिलाफ वसूली का अधिकार संरक्षित किया जाएगा। क्षतिपूर्ति के दावों की सुनवाई सामान्य अदालतों में भी की जाएगी।

(ii) आपराधिक अभियोजन कार्यवाही के लिए क्षतिपूर्ति कानून, 1971

3.17 उपरोक्त के साथ में विशेष तौर पर अनुचित तरीके से सजा देने के मामलों से निपटने के लिए संसद का एक कानून भी उपलब्ध है - आपराधिक अभियोजन कार्यवाही के लिए क्षतिपूर्ति कानून, 1971, जो निर्दिष्ट करता है कि किसी को भी आपराधिक सजा के परिणामस्वरूप यदि किसी व्यक्ति को क्षति हुई है जिसे बाद में रद्द या कम किया गया है ("आवेदक") को राज्य द्वारा मुआवजा दिया जाएगा (अनुच्छेद 1)। राज्य ऐसे व्यक्ति को भी क्षतिपूर्ति प्रदना करता है जिसे रिमांड ऑर्डर या कुछ अन्य प्रकार की हिरासत केपरिणामस्वरूप क्षति का सामना करना पडा हो, बशर्ते कि उसे बरी कर दिया गया हो, या उसके विरुद्ध अभियोजन निलंबित या समाप्त कर दिया गया हो (अनुच्छेद 2)।

(iii) <u>कानून प्रर्वतन उपायों के लिए क्षतिपूर्ति कानून</u>

"कानून प्रवर्तन उपायों के क्षतिपूर्ति पर कानून" के रूप में अनुवादित "स्ट्रैफवरफोल्गंग्सट्सचैडिगंग्सजेसेट" (स्ट्रैग) 1971 से लागू हुआ था जो कि मुख्य रूप से अंतिम फैसेले के लघुकरण या उन्मूलन गैरकानूनी सुनवाई पूर्व हिरासत और अन्य गैरकानूनी हिरासत, गैरकानूनी खोज और जब्त से उत्पन्न होने वाले क्षतिपूर्ति के दावों से निपटने के लिए बनाया गया था।

3.19 § 7 एब्स. 3 स्ट्रैग वित्तीय नुकसान के लिए किसी भी अन्य क्षतिपूर्ति के अलावा क्षतिपूर्ति के रूप में गैर-आर्थिक क्षति के लिए प्रति दिन € 25 प्रति दिन (गलत तरीके से हिरासत में रहने के लिए) एक निश्चित राशि प्रदान करता है। वित्तीय हानि वाले कारकों में अक्सर रोजगार में नुकसान के कारण आय में कमी, पेंशन बीमा पॉलिसी में हानि (आम तौर पर देय या आय में नुकसान के परिणामस्वरुप), वकील का शुल्क, रहने के लिए नई जगह की खोज से उत्पन्न होने वाली लागत और स्वास्थ्य में क्षति के लिए क्षतिपूर्ति शामिल है।

3.20 इस कानून के तहत क्षतिपूर्ति के लिए दावा राज्य न्याय प्रशासन के समक्ष किया जाता है, जो दावे पर निर्णय लेते हैं। उपर्युक्त दावों में सबूत प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी वादी की होती है, जिस के कारण वादी को वित्तीय नुकसान के लिए किसी भी प्रकार की क्षतिपूर्ति प्राप्त करना वास्तविकता में बहुत ही मुश्किल बन गया है।

3.21 § 5 स्ट्रग कुछ मामलों में क्षतिपूर्ति के दावों पर रोक लगाती है जैसे कि घायल पार्टी द्वारा अभियोजन पक्ष के कार्य संबंध - जानबूझकर या घोर लापरवाही से ("घोर लापरवाही" शब्द में एक ऐसा कृत्य भी शामिल है जहां गलत तरीके से दोषी व्यक्ति अपने संरक्षण के कर्तव्यों की अनदेखी करता है, उदाहरण के लिए, निर्दोष होने के बावजूद आरोपी के द्वारा अपना अपराध स्वीकार करना); वादी द्वारा सहायक परिस्थितियों को छुपाना।

(iv) <u>जर्मन आपराधिक संहिता</u>

3.22 अन्य विशिष्ट कानूनों के अनुरुप, जर्मन आपराधिक संहिता "स्ट्रैफेजेटज़बच" (1872 से प्रभावी) की धारा 97क और 97ख संघीय संवैधानिक न्यायालय के समक्ष अत्यधिक लंबी कार्यवाही के कारण होने वाली पीड़ा के मामलों से संबंधित है, ऐसी देरियों से पीडितों को "पर्याप्त क्षतिपूर्ति" प्रदान करता है। जहां कार्यवाही की लंबाई संघीय संवैधानिक न्यायालय के कार्यों और स्थिति को ध्यान में रखते हुए तर्कसंगतता केस-दर-केस आधार पर स्थापित की जाएगी। यहां क्षतिपूर्ति और हानिपूर्ति के फैसले के लिए न्यायिक देरी (Verzögerungsbeschwerde) के खिलाफ औपचारिक शिकायत की आवश्यकता होती है।[31]इस कानून में एक गैर-आर्थिक नुकसान के मामलों के लिए भी प्रावधान किये गये हैं, जो किसी मामले के अत्यधिक लंबे समय तक चलने पर अस्तित्व में माना जाएगा। यदि व्यक्तिगत मामले की परिस्थितियां किसी अन्य प्रकार के समाधान की अनुमति नहीं देती हैं, तो इस तरह के नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति का दावा किया जा सकता है विशेष रूप से एक घोषणा कि कार्यवाही अत्यधिक लम्बे समय तक चली थी।[32]

(V) जर्मन नागरिक संहिता

3.23 प्रशासनिक कृत्यों से संबंधित कर्तव्य के आधिकारिक उल्लंघन के संबंध में, "आधिकारिक दायित्व" जर्मन राज्य दायित्व कानून का केंद्रीय मानक है।इसके लिए कानूनी आधार जर्मन नागरिक संहिता (1900 से प्रभावी) में है जिसे बुर्जरलेस गेसेटबर्ग (बीजीबी) कहा जाता है। § 839, अनुच्छेद 34 जीजी के साथ पढें § 839 बीजीबी "कर्तव्य के आधिकारिक उल्लंघन के मामले में दायित्व" के संबंध में प्रावधान करता है। निम्न रुप से बताता है:(1) यदि कोई अधिकारी जानबूझकर या लापरवाही से अपने आधिकारिक कर्तव्यों

---

[31] धारा 97 बी (1), जर्मन आपराधिक संहिता।

[32] ऐसे मामले में प्रदान की गई क्षतिपूर्ति की राशि प्रत्येक वर्ष के लिए 1,200 यूरो तय की गई है तथा संघीय संवैधानिक न्यायालय के पास यह शक्ति निहित है कि वह अपने विवेक से विलंब के साथ देरी के अनुसार अधिक या कम राशि निर्धारित करे। धारा 97ए(1), जर्मन आपराधिक संहिता।

का उल्लंघन तीसरे पक्ष के प्रति करता है, तो वह तीसरे पक्ष को हुए नुकसान की भरपाई करेगा। यदि अधिकारी केवल लापरवाही का दोषी पाया जाता है तो उस से तभी वसूली की जाएगी यदि पीडित व्यक्ति किसी अन्य तरीके से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने में असमर्थ होगा।

(2) किसी मामले के फैसले में यदि कोई अधिकारी अपने कर्तव्य का उल्लघंन करता है और उसके उल्लंघन की वजह से कोई भी अपराध होता है तो उसके के कारण हुए नुकसान की भरपाई करने का दायित्व उस अधिकारी का होगा। अपने आधिकारिक कार्य के निर्वहन में अनुचितरुप से मना करने या देरी के लिए यह प्रावधान लागू नहीं होगा।

(3) यदि पीडित पक्ष जानबूझकर या लापरवाही के कारण नुकसान से बचने में अपील का उपयोग करते हुए असफल होती है तो कर्तव्य में लापरवाही के कारण देय क्षतिपूर्ति का प्रावधान लागू नहीं होगा।

3.24 § 839 बीजीबी धारा 34 जीजी के साथ संयोजन में राज्य के हस्तांतरण के द्वारा सार्वजनिक प्राधिकारियों के दायित्व का आधार तैयार करती है और यह नागरिकों के साथ बाहरी संबंधों से संबंधित है। इन प्रावधानों के तहत "आधिकारिक दायित्व" तब उत्पन्न होता है जब सरकारी अधिकारी किसी तीसरे पक्ष की ओर आधिकारिक कर्तव्य का उल्लंघन करता है, जिससे तीसरी पार्टी को नुकसान पहुंचता है, यह तीसरी पार्टी नागरिक या अन्य कानूनी इकाई भी हो सकती है।जांच परीक्षण योजना के संदर्भ में, निम्नलिखित 6 पूर्वापेक्षाएँ पूरी की जानी चाहिए:

1. किसी भी सरकारी अधिकारी के द्वारा सरकारी शक्तियों का उपयोग;
2. किसी तृतीय पक्ष के कर्तव्य का उल्लंघन;
3. कर्तव्य का उल्लंघन / अतिक्रमण;

4.क्षति की प्रभावशीलता;

(i) दायित्व का कोई अस्वीकरण और कोई सीमा नहीं; तथा

(ii) सीमाओं का कोई क़ानून नहीं

3.25 उपरोक्त वर्णित प्रावधान अन्यायपूर्ण और आपराधिक प्रशासनिक कृत्यों के कारण होने वाले परिणामों के लिए प्रावधान निर्धारित करते हैं और नुकसान के लिए दावों के औचित्य को निर्धारित करते हैं। आधिकारिक दायित्वों में प्रारम्भिक रुप से राज्य के लिए कार्य कर रहे व्यक्ति के व्यक्तिगत दायित्व शामिल हैं जिसे इस कार्य के लिए राज्य के द्वारा नियुक्त किया गया है। बाद में यह दायित्व धारा 34जीजी के तहत राज्य के पास स्थानांतरित हो जाती है। इस प्रकार अधिकारी स्वंय जिम्मेवार होता है और बाद में राज्य द्वारा मुक्त कर दिया जाता है। अधिकारी के द्वारा किए गए दुराचार को राज्य का गलत कार्य नहीं माना जाता है। राज्य केवल अधिकारी की गलती मानता है। राज्य वास्तव में एक सुरक्षात्मक ढाल

के रूप में उत्तरदायी स्थान लेता है और प्रभावित नागरिक को क्षतिपूर्ति प्रदान करता है। आधिकारिक दायित्व सन्निकट नहीं है, बल्कि केवल एक अप्रत्यक्ष राज्य दायित्व है।

घ. संयुक्त राज्य अमेरिका

3.26 संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) में अनुचित रुप से सजा के परिणामस्वरुप हुई न्याय की हत्या के मामलों को प्राथमिक रुप से उन व्यक्तियों को संघीय या संबधित राज्य के काननू, जो भी लागू हो के अनुरुप क्षतिपूर्ति प्रदान कर हल किया जाता है जिन्हें गलत तरीके से सजा दी गई है।

(i) संघीय कानून

3.27 इस विषय पर संयुक्त राज्य संहिता शीर्षक 28 § 1495 और §2513 के रुप में संघीय कानून है। इस कानून के तहत उन व्यक्तियों के दावों का निपटान किया जाता है जिन्हें गलत तरीके से संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध किये गये अपराधों के लिए सजा दी गई है और जेल में डाल दिया गया है। इस कानून के तहत यदि एक वादी को निर्दोषता के लिए माफ कर दिया जाए, सजा को पलट दिया जाएया नई सुनवाई या पुर्नसुनवाई में दोषी नहीं पाया जाए तो वह इन आधारों पर राहत पाने का हकदार है। ये दावे संघीय दावों के लिए यूएस न्यायालय के पास निहित होते हैं। यह संहिता कैद की अवधि के आधार पर एक निश्चित क्षतिपूर्ति राशि प्रदान करता है।[33]

(ii) राज्यों के कानून

3.28 यूएस के सभी राज्यों के अपने संबंधित राज्य के लिए अनुचित तरीके से सजायहाफ्ता, और कैद लोगों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए मौद्रिक और / या गैर - मौद्रिक सहायता देने के लिए कानून हैं जबकि कुछ राज्यों ने कैद की अवधि के आधार पर कुछ निश्चित

[33]प्रत्येक वर्ष की कैद के लिए $ 50,000 की राशि और मृत्यु पर प्रत्येक वर्ष $ 100,000 तय की जाती है।

रकम भुगतान करने की व्यवस्था की है (अलाबामा, कैलिफ़ोर्निया, कोलोराडो, कोलंबिया जिला, फ्लोरिडा, इलिनोइस, हवाई, आयोवा, कान्सास, लुइसियाना, मिशिगन, मिनेसोटा, मिसिसिपी, मिसौरी, न्यू जर्सी, न्यूयॉर्क, उत्तर कैरोलिना, टेक्सास, वर्जीनिया, वरमोंट, वाशिंगटन), जबकि अन्य ने केस दर केस के आधार पर क्षतिपूर्ति की रकम निर्धारित करने का निर्णय का विवेकाधिकार उपयुक्त मंच को प्रदान की है। (वैधानिक दिशा निर्देश / निर्धारित अधिकतम राशि के साथ) (कनेक्टिकट, मैसाचुसेट्स, मेन, मैरीलैंड, नेब्रास्का, न्यू हैम्पशायर, पश्चिम वर्जीनिया)।

3.29 इलिनोइस राज्य के क्षतिपूर्ति तंत्र में एक विशिष्ट उल्लेख की आवश्यकता होती है, जहां कानून (इलिनोईस रेव स्टेट अध्याय 705 § 505/1) एक सारणीबद्ध मुआवजा विधि प्रदान करता है, जो कि कैद की अवधि के आधार पर देय अधिकतम राशि निर्धारित करती है:

- 05 साल या उससे कम - $ 85,350 अधिकतम
- 14 साल या उससे कम - $ 170,000 अधिकतम
- 14 से अधिक वर्षों - $ 199,150 अधिकतम

3.30 कोलंबिया जिले के प्रावधान भी उल्लेखनीय है, जहां डीसी एसटी § 2-421 अंतरिम राहत प्रदान करता है, जिसमें कहा गया है कि क्षतिपूर्ति याचिका की मंजूर होने के 21 दिनों में वादी को तत्काल सुरक्षित सेवाएं जैसे आवास, परिवहन, निर्वाह, पुन: एकीकृत सेवाएं, और मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की देखभाल में सहायता प्रदान करने के लिए $ 10,000 प्रदान किये जाएंगे।

3.31 उपर्युक्त के अतिरिक्त, अमेरिका में अधिकांश राज्य पुनर्वास और समाज की मुख्य धारा में दुबारा से जुडने के लिए इन पीड़ितों की सहायता के लिए गैर-मौद्रिक क्षतिपूर्ति भी प्रदान करते हैं; इनमें आवास सहायता, नौकरी के लिए प्रशिक्षण, नौकरी की खोज और नियुक्ति सेवाओं के मामले में सहायता, नियोक्ताओं को सन्दर्भ प्रेषित करना, और शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं, परामर्श सेवाएं सहित संक्रमणकालीन सेवाएं शामिल हैं; और और सजा के रिकॉर्ड को समाप्त करना - वादियों को समाज में पुन: समाकलन करने में सहायता प्रदान करते हैं।

ड. कनाडा

3.32 कनाडा ने 1976 में आईसीसीपीआर को अंगीकार किया; हालांकि अभी तक उक्त प्रसंविदा को लागू करने के लिए अभी तक कोई कानून नहीं बनाया गया है, संघीय एवं प्रान्तीय न्याय मंत्रियों ने सन् 1988 में सैद्धान्तिक रुप से अनुचित तरीके से सजा प्राप्त लोगों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने से संबंधित दिशानिर्देशों के संयुक्त सेट जारी किये थे।

3.33 इस का शीर्षक “अनुचित तरीके से दोषी और कैद व्यक्तियों के लिए क्षतिपूर्ति पर संघीय / प्रांतीय दिशानिर्देश" है, इन दिशा निर्देशों में उन मानदण्डो के बारे में बताया गया है जिससे किसी व्यक्ति को क्षतिपूर्ति के लिए पात्र माना जा सकता है। विशेष रूप से, ये दिशानिर्देश क्षतिपूर्ति के भुगतान को वास्तविक व्यक्ति जिसे अनुचित तरीके से दोषी ठहराया गया और कैद किया गया था तक सीमित करते हैं।

3.34 उक्त दिशा निर्देशों के अनुसार, क्षतिपूर्ति के लिए पात्रता के लिए आवश्यक शर्तें निम्नानुसार हैं:

(I) गलत सजा सुनाए जाने के परिणामस्वरुप व्यक्ति को कैद अवश्यहोनी चाहिए;
(ii) क्षतिपूर्ति केवल उसी व्यक्ति को प्रदान की जानी चाहिए जिसे आपराधिक संहिता या अन्य संघीय पेनल अपराध के लिए अनुचित तरीके से सजा सुनाई गई हो और कैद में डाला गया हो;
(iii) सामान्य अपील प्रक्रिया के बाहर, नये या नये खोजे गये तथ्यों के आधार पर सजा के निर्णय को पलट दिया गया हो;
(iv) नया तथ्य यह दिखाए कि आवेदक तथ्यात्मक रुप से निर्दोष है यानि कि आवेदक ने अपराध नहीं किया है और इस के कारण न्याय की हत्या हुई है; और
(v) सभी प्रकार के उपलब्ध अपीलीय उपाय असफल हो जाएं।

3.35 दिशानिर्देशों के तहत क्षतिपूर्ति की मात्रा निर्धारित करते समय गैर-आर्थिक और आर्थिक नुकसान दोनों को ही शामिल किया जाता हैं:
(i) गैर - आर्थिक नुकसान
क) स्वतंत्रता का नुकसान और शारीरिक और मानसिक कठोरता और कैद के कारण रोष;

ख) प्रतिष्ठा का नुकसान जिस पर पिछले आपराधिक रिकॉर्ड के आधार पर विचार किया जाएगा;

ग) परिवार या अन्य व्यक्तिगत संबंधों में बाधा या समापन।

(ii) आर्थिक नुकसान

क) आय के साथ आयकर के समायोजन सहित आजीविका की हानि और जेल में रहने के दौरान प्राप्त लाभों की हानि;

ख) भविष्य में कमाने की योग्यता की हानि:

ग) सम्पति का नुकसान या कैद के परिणाम स्वरुप अन्य महत्वपूर्ण वित्तीय नुकसान

3.36 उपरोक्त वर्णित बिन्दुओं का आकलन करते समय जांच ऐजेन्सी को निम्नलिखित तथ्यों पर भी विचार करने की आवश्यकता है:

(i) आवेदक का दोषपूर्ण आचरण या अन्य कार्य जो उसके बारे में गलत धारणा बनाने में योगदान देते थे;

(ii) अपने लिए उपलब्ध उपचारों का उपयोग करने में आवेदक की तत्परता।

3.37 इसके अतिरिक्त, आवेदक द्वारा माफी या रिहाई के फैसले को प्राप्त करने में खर्च की गई उचित राशि को क्षतिपूर्ति में शामिल किया जाना चाहिए। गैर - आर्थिक नुकसानों की भरपाई के लिए क्षतिपूर्ति की राशि एक लाख डॉलर ($ 100,000) से अधिक नहीं होनी चाहिए। यहां पर यह नोट किया जाना चाहिए कि इन दिशा निर्देशों को बाध्यकारी कानून नहीं माना जाना चाहिए; और इनके कारण क्षतिपूर्ति के लिए कोई भी कानूनी अधिकार उत्पन्न नहीं होता है, ये क्षतिपूर्ति के लिए किसी भी प्रकार की कानूनी बाध्यता भी उत्पन्न नहीं करते हैं, क्षतिपूर्ति के लिए भुगतान करने का निर्णय क्राऊन का विवेकाधिकार है। इस तरह, कथित तौर पर, पिछले 20 वर्षों में किए गए क्षतिपूर्ति के कई भुगतान दिशानिर्देशों द्वारा प्रस्तावित मानदंडों के कारण किसी अन्य तरीके से या दूसरे तरीके से निपटाए गए।[34]

3.38 उपर्युक्त के अलावा, कनाडा में एक अनुचित तरीके से दोषी व्यक्ति के पास भी कार्रवाई के नागरिक कारकों का उपयोग करने का विकल्प होता है, जैसे दुर्भावनापूर्ण अभियोजन , लापरवाहीयुक्त जांच, अभियोजन पक्ष का दुर्व्यवहार, या झूठे आरोपों के आधार पर कारावास, या अधिकारों के उल्लंघन के लिए दावा कनाडा के अधिकारों एवं स्वतन्त्रता

---

[34] "क्षतिपूर्ति के लिए हकदारी - कानूनी तंत्र"।

https://www.attorneygeneral.jus.gov.on.ca/english/about/pubs/truscott/section5.phpपर उपलब्ध:

चार्टर के तहत सुरक्षित है। हिल बनाम हैमिल्टन-वेंटवर्थ क्षेत्रीय पुलिस सेवा बोर्ड के मामले में कनाडा के उच्चतम न्यायालय के द्वारा "उपेक्षाकारी जांच" के लिए कार्रवाई करने का प्रावधान किया गया था[35], जहां पर अदालत ने यह महसूस किया कि सावधानी के उपयुक्त मानदण्ड जो कि अन्य पेशेवर व्यक्तियों से अपेक्षित हैं वैसे ही "इसी तरह की परिस्थितियों में एक उचित पुलिस अधिकारी" भी पेशेवर होना चाहिए।

च. न्यूजीलैंड

3.39 न्यूजीलैंड में अनुचित सजा और कैद के विषय को राज्य के द्वारा क्षतिपूर्ति देकर अनुग्रहपूर्वक सम्बोधित किया जाता है। ये अनुग्रह भुगतान न्याय मंत्रालय के 'अनुचित सजा और कैद' (मई, 2015) ("दिशानिर्देश") के अनुरुप दिये जाते हैं। ये दिशानिर्देश "आपराधिक मामलों में गलत तरीके से दोषी और कैद किए गए व्यक्तियों के लिए क्षतिपूर्ति और अनुग्रह भुगतान के लिए कैबिनेट मानदंड" पर आधारित हैं (न्याय मंत्रालय,1998)। उक्त दिशानिर्देश दोनों विषयों को समाहित करते हैं कि किसी व्यक्ति को क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिए या नहीं, और उन्हें कितनी क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिए।

3.40 दिशा निर्देशों के तहत यदि किसी व्यक्ति को अनुचित तरीके से कैद में डाल दिया जाता है और उसके कम से कम उसके निर्दोष होने की संभावना हो तथा बाद में उसे रिहा कर दिया गया हो तो वह क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए पात्र है। उपरोक्त के साथ साथ (i)वादी को आवेदन के समय जीवित होना चाहिए (ii) सजा के रुप में कैद में समय या उसका कुछ भाग बिताया हो (iii) उसे माफ कर दिया गया हो या उसकी सजा को पुर्नअपील के बिना रद्द कर दिया गया हो।

3.41 पात्र वादियों के लिए दिशा निर्देशों में तीन प्रकार की श्रेणियों का प्रावधान किया गया है:

(i) गैर-आर्थिक नुकसानों के लिए अनुगामी सजा के रुप में कैद में बिताए गये प्रत्येक वर्ष के लिए शुरुआती रकम एक लाख डॉलर ($100,000)।

(ii) अनुगामी सजा के लिए आर्थिक नुकसानों की क्षतिपूर्ति के लिए भुगतान

(iii) सार्वजनिक माफी या निर्दोषता प्रमाण पत्र

---

[35][2007] एससीसी 41।

3.42 गैर आर्थिक नुकसानों की क्षतिपूर्ति में निम्न कारकों को शामिल किया जाता है: स्वंतत्रता की हानि, प्रतिष्ठा की हानि (क्राउन के द्वारा दोषी व्यक्ति पर किसी भी माफी के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए)। परिवार या किसी भी अन्य व्यक्तिगत संबंधों का नुकसान या बाधा और मानसिक या भावनात्मक नुकसान। और आर्थिक नुकसानों मे निम्न कारक शामिल हैं: आजीविका का नुकसान, आय का नुकसान, आयकर का समायोजन और कैद के दौरान प्राप्त किये गये अन्य लाभ; भविष्य में आजीविका उपार्जन की क्षमता का नुकसान; सम्पति का नुकसान या सजा या कैद के परिणामस्वरुप होने वाले अन्य वित्तीय नुकसान; और स्वंय आवेदक या आवेदक की ओर से किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा माफी या रिहाई प्राप्त करने के लिए किये गये खर्च की लागत। इन दिशा निर्देशों में दावा प्रस्तुत करने की प्रक्रिया को भी निर्धारित किया गया है।

3.43 हालांकि न्यूजीलैण्ड में अनुचित तरीके से कैद या सजा के लिए क्षतिपूर्ति वैधानिक अधिकार से उत्पन्न नहीं होती है केवल सरकार के द्वारा अनुग्रहपूर्वक दी जाती है, अक्सर आह्वान किया जाता है और इसका उपयाग किया जाता है, इस संबंध में वर्ष 2016 के टिएना एन्थोनी पोरा का मामला उल्लेखनीय है जहां वादी को अनुचितपूर्ण तरीके से बलात्कार के आरोप में सजा सुनाई गई थी और उसने 21 वर्ष कारावास में बिताए थे। इन दिशा निर्देशों के अनुसरण में, न्यूजीलैण्ड की सरकार ने वादी को अनुचित तरीके से सजा सुनाए जाने एवं कारावास के लिए 2.52 मिलियन डॉलर का भुगतान (आर्थिक और गैर आर्थिक नुकसानों के लिए) किया।[36]

---

[36] "टीना एंटीहोनी पोरा द्वारा क्षतिपूर्ति के दावे पर न्याय मंत्री के लिए दूसरी रिपोर्ट"। माननीय रॉडनी हैंनसेन सीएनजीएम क्यूसी https://www.justice.govt.nz/assets/Documents/Publications/pora-teinacompensation-claim-quantum-report.pdf) पर उपलब्ध: (अंतिम बार 29 जुलाई 2018 को देखा गया)

ऑस्ट्रेलिया

3.44 ऑस्ट्रेलिया में किसी भी अनुचित तरीके से सजा सुनाए गये या कारावास में डाले गये व्यक्ति को ऑस्ट्रेलियन केपिटल टेरिट्रीटेरिट्री (एसीटी) के अलावा अन्य किसी भी प्रकार का सामान्य कानून या वैधानिक अधिकार नहीं है। हालांकि, एक राज्य या क्षेत्रीय सरकार अपने स्वंय के खाते से या पार्टी के अनुरोध पर क्षतिपूर्ति के भुगतान के लिए अनुग्रह भुगतान कर सकती है।[37]

3.45 एसीटी के संबंध में मानवाधिकार अधिनिमय, 2004 एसीटी अनुचित तरीके से दी गई सजा के लिए क्षतिपूर्ति के भुगतान का प्रावधान एसीटी के लिए करता है। अधिनियम की धारा 23 के तहत कोई व्यक्ति अनुचित तरीके से कारावास के लिए क्षतिपूर्ति के लिए आवेदन कर सकता है यदि (i) अदालत के अन्तिम निर्णय के द्वारा उसे आपराधिक अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो; (ii) उन्हें अदालत के फैसले के कारण कारावास झेलना पडा हो; (iii)कि सजा को पलट दिया गया हो या किसी नये तथ्य के कारण यह पता चला हो कि आरोपी व्यक्ति निर्दोष है और न्याय की हत्या हुई है(धारा 23(1))। यदि पूर्वोक्त शर्तों को आरोपी व्यक्ति पूरा करता है तो धारा उसे 'कानून के अनुसार' (धारा 23(2)) क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार प्रदान करता है। इस धारा के अनुसार एक विशिष्ट अपवाद का प्रावधान किया गया है जहां यह साबित होता है कि यदि किसी अज्ञात तथ्य का को पूर्ण रुप से या आंशिक रुप से न्यायालय के समक्ष विचार हेतु नहीं रखा गया है तो इसकी पूर्ण जिम्मेदारी स्वंय व्यक्ति की होगी (धारा 23(3))।

3.46 आईसीसीपीआर के अनुच्छेद 14(6) के अनुसरण में धारा 23 की उपधारा 1(बी) के माध्यम से क्षतिपूर्ति के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए सजा का सामना करने वाले व्यक्ति के लिए एक अतिरिक्त तत्व जोड़ता है। यहां पर यह

---

[37]ऑस्ट्रेलियाई अधिकार क्षेत्र में, जहां अनुग्रह क्षतिपूर्ति के भुगतान किए जाते हैं, इसमें आर्थिक और गैर-आर्थिक हानियां दोनों शामिल हैं यानी हानि जिसकी गणना आसानी से हो जाती है (जैसे आय का नुकसान), और हानि जिसकी आसानी से गणना नहीं की जा सकती है (जैसे दर्द और पीड़ा या जीवन की अपेक्षाओं का नुकसान) ।

उल्लेखनीय है कि धारा 23(1)(बी) में उपयोग की गई अभिव्यक्ति 'सजा' की व्याख्या कर इसमें केवल कारावास को ही शामिल नहीं किया गया है बल्कि इस से कम अनुशिस्त जैसे केवल जुर्माना या दोषसिद्धी को रिकॉर्ड करना भी शामिल किया गया है।[38]

3.47 यहां पर उल्लेखनीय है कि एक कानूनी तंत्र या यहां तक कि क्षतिपूर्ति के लिए दिशा निर्देशों के अभाव में, इस प्रकार के अनुग्रह क्षतिपूर्ति भुगतान विवेकाधीन और सामान्यत: 'मामूली, पारदर्शिता की कमी की वजह से दूषित' हो जाते हैं, इस से देय क्षतिपूर्ति के औपचारिक या अनौपचारिक प्रशुल्क को स्थापित करना मुश्किल हो जाता है।[39]

3.48 अन्तरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के एक अध्ययन यह दर्शाता है कि अन्तरराष्ट्रीय कानून और पश्चिमी देशों के कानून (उपरोक्त वर्णित देशों सहित) कानून की हत्या दावाकर्ता को अदालत के द्वारा अन्तिम निर्णय सुनाने के पश्चात होती है और एक नया तथ्य सामने आता है कि दावाकर्ता ने अपराध किया ही नहीं था। और, वे प्राथमिक रुप से न्याय की हत्या के समाधान के तौर पर अनुचित तरीके से सजा प्राप्त पीडित को आर्थिक क्षतिपूर्ति और गैर आर्थिक सहायता प्रदान कर राहत प्रदान करते हैं।

---

[38] एड्रियन होल. गलत क्षतिपूर्ति के लिए मुआवजा। अपराध और आपराधिक न्याय में रुझान और मुद्दे: संख्या 356, मई 2008, ऑस्ट्रेलियाई सरकार, ऑस्ट्रेलियाईअपराध विज्ञान संस्थान। Https://aic.gov.au/publications/tandi/tandi356 पर उपलब्ध(अंतिम बार29 जुलाई 2018 को देखा गया)

[39]टॉम पर्सी क्यूसी. निराश बाहरी लोग: अनुचित अपराध स्वीकारोक्ति के लिए क्षतिपूर्ति। प्राथमिक अंक 81 जुलाई / अगस्त 2007. http://www.austlii.edu.au/au/journals/PrecedentAULA/2007/66.pdf पर उपलब्ध है। (अंतिम बार 2 9 जुलाई 2018 को देखा गया) ।

अध्याय -4

वर्तमान परिदृश्य- समीक्षा एवं अपर्याप्ताएं

4.1 मौजूदा कानूनों की समीक्षा और न्यायाविधि अनुचित सजा, कैद या दोषसिद्धि इत्यादि के परिणामस्वरुप न्याय की हत्या के संबंध में न्यायालाय आधारित तीन प्रकार के उपाय प्रस्तुत करते है: (i) शासकीय कानूनी उपाय; (ii) गैर शासकीय कानूनी उपाय; (iii) आपराधिक कानूनी उपाय। इस अध्याय में पुलिस अधिनियम, 1861 के प्रासंगिक प्रावधानों और इस संदर्भ में मानवाधिकार आयोग की भूमिका का विशेष रुप से उल्लेख किया गया है।

4.2 उपरोक्त वर्णित पहले दो उपाय पीडित केन्द्रित हैं जो कि अनुचित तरीके से सजा, दोष सिद्धि और / या कैद से पीडित व्यक्ति को राज्य से आर्थिक राहत प्रदान करवाते हैं। आपराधिक कानूनों में उपलब्ध तीसरा उपाय गलती करने वाले व्यक्ति को जिम्मेदार ठहराता है यानि कि राज्य के संबंधित अधिकारी के विरुद्ध उसके द्वारा किये गये दुराचरण के लिए आपराधिक कार्रवाई के लिए प्रक्रिया प्रारम्भ करना।

क. शासकीय कानूनी उपाय

4.3 अनुचित सजा, कैद या दोषसिद्धि इत्यादि के परिणामस्वरुप न्याय की हत्या के लिए शासकीय कानूनी उपाय भारतीय संविधान में मिलते हैं। इस तरह के मामलों में यह अनुच्छेद 21 (जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार) एवं अनुच्छेद 22 (मनमाने तरीके से गिरफ्तारी और गैर-कानूनी कारावास इत्यादि से सुरक्षा) के तहत मौलिक अधिकारों का हनन है जो कि उच्चतम न्यायालय के याचिका क्षेत्राधिकार और संविधान के अनुच्छेद क्रमश: 32 और 226 के तहत उच्च न्यायालय के याचिका क्षेत्राधिकार को अभिमंत्रित करता है: इसमें पीडित को क्षतिपूर्ति देने का प्रावधान भी शामिल है, जिसने राज्य के कर्मचारियों के द्वारा हिरासत या शारीरिक परेशानियों का सामना करना पड़ा हो।

4.4 कानून व्यवस्था को बनाए रखने का कार्य सम्प्रभु कार्य माना जाता है।[40] पारम्परिक वर्गीकरण के आधार पर गिरफ्तारी एवं कारावास को 'सम्प्रभु' कार्य के रुप में वर्गीकृत किया है, जिसमें किसी भी व्यक्ति को राज्य के द्वारा अनावश्यक हिरासत या कारावास में डाल दिया जाता था, वह किसी भी मौद्रिक क्षतिपूर्ति का हकदार नहीं था और अदालतें कानून के अनुसार नहीं होने पर केवल गिरफ्तारी या हिरासत को समाप्त कर सकती थीं। हालांकि, इसे मेनका गांधी के फैसले से बदला गया।[41] जिसमें उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में अनुच्छेद 21 की एक विशिष्ट व्याख्या करते हुए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की अवधारणा को

एक नया अभिविन्यास प्रदान किया। इस फैसले से एक नया परिवर्तन आया कि अब न्यायालय अनुचित सजा या कारावास के मामलों में क्षतिपूर्ति प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया।

4.5 इस संबंध में, खत्री एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य [42](भागलपुर अन्धता मामला) का मामला उन मामलों में से एक केस था जिसमें यह प्रश्न खडा हुआ कि अनुच्छेद 21 का उल्लंघन कर किसी व्यक्ति के जीवन या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से वंचित किय जाने पर क्या न्यायालय द्वारा राहत प्रदान की जा सकती है और ये राहत क्या हो सकती हैं। इस मामले में यह कहा गया कि पुलिस ने कुछ कैदियों को अंधा कर दिया था और इसलिये राज्य पर उन कैदियों को क्षतिपूर्ति देने का दायित्व था। हालांकि इस मामले में भी न्यायालय ने राज्य के आर्थिक दायित्वों के प्रश्न पर कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया और यह आदेश दिया कि पीडितों का नेत्रहीन गृह, दिल्ली में रहने के खर्चों को राज्य सरकार वहन करे।

4.6 उपरोक्त के अलावा, उच्चतम न्यायालय के फैसलों की एक शृखंला है जो कि राज्य के प्रतिनिधिक दायित्वों का प्रतिप्रादन करती है, जो कि राज्य को उसके कर्मचारियों द्वारा शक्तियों के गलत उपयोग के लिए उत्तरदायी बनाने के आधारभूत सिंद्धान्त को विकसित करता है - इनमें से पुलिस और जांच ऐजेन्सियों के द्वारा किया गया दुराचरण भी शामिल है। ये निर्णय उक्त मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए प्रमुख रुप से शासकीय कानूनी उपायों के रुप में आर्थिक क्षतिपूर्ति को स्थापित करते हैं।

4.7 मिसाल स्थापित करने वाला मामला रुदल शाह बनाम बिहार राज्य[43] वर्ष 1983 में आया जिसमें उच्चतम न्यायालय ने अपने याचिका क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए संविधान की धारा 21 एवं 22 के उल्लंघन करने पर क्षतिपूर्ति प्रदान करने के आदेश दिये। इस मामले मे याचिकाकर्ता को गैर कानूनी रुप से निर्दोषता आदेश के बाद भी 14 वर्षों

---

[40]'विशेष' समिति, भारतीय बीमा कंपनी एसोसिएशन पूल बनाम श्रीमती राधाबाई, एआईआर 1976 एमपी 164, अदालत ने महसूस किया कि "ये मामले यह दिखाते हैं कि पारंपरिक संप्रभु कार्य कानूनों का निर्माण, न्याय प्रशासन, आदेशों का क्रियान्वयन, अपराध का दमन, युद्ध करना, शांती सन्धियां करना, अन्य परिणामी कार्य । चाहे यह सूची पूरी हो या नहीं, यह कम से कम स्पष्ट है कि सामाजिक-आर्थिक और कल्याणकारी गतिविधियां एक आधुनिक राज्य द्वारा पारंपरिक संप्रभु कार्यों में शामिल नहीं हैं।"

[41] मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ, एआईआर 1978 एससी 597।

[42]एआईआर 1981 एससी 928।

तक कारावास में रखा गया था। न्यायालय ने कहा कि :

एक तरह का सामान्य तरीका जिस से कि इस अधिकार को सुरक्षित किया जा सकता है और अनुच्छेद 21 के अनुरुप अनुपालना सुनिश्चित की जा सकती है वह है कि उल्लंघनकर्ता से आर्थिक क्षतिपूर्ति करवाई जाए। प्रशासनिक कठिनाईयों के कारण मौलिक अधिकारों का निन्दनीय उल्लंघन होता है, जिसे न्यायपालिका के पास अपनाने के लिए उपलब्ध किसी अन्य तरीके से सही नहीं किया जा सकता है। (जोर देते हुए कहा)

4.8 अदालत ने आगे यह महसूस किया कि यह उपाय अपकृत्यों पर कार्रवाई के लिए अशासकीय कानूनी उपायों या आपराधिक कानून के तहत उपलब्ध स्वतंत्र अधिकार है यानि की अपराधी के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही शुरु करना।[44] रुदल शाह (सुप्रा) के मामले के समान एक और मामले बोमा चारा ओराओं[45] में उच्चतम न्यायालय ने यह घोषित किया कि कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन गैर कानूनी रुप से किया गया हो, वह सीधे उच्चतम न्यायालय से सम्पर्क कर सकता है और अनुच्छेद 21 के तहत अपने मौलिक अधिकारों के हनन के लिए क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है। परिणामस्वरुप, ऐसे मामलों की एक श्रृखंला बन गई जिनमें उच्चतम न्यायालय ने उन व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति दिलवाई जिनके अनुच्छेद 21 और 22 के तहत मौलिक अधिकारों का हनन गैर कानूनी रुप से सजा, अनुचित तरीके से कारावास इत्यादि के कारण हुआ था।[46]

4.9 अनुचित तरीके से गिरफ्तार, कैद इत्यादि किये गये पीडित को "उचित आर्थिक क्षतिपूर्ति" प्रदान करने की आवश्यकता पर बल देते हुए उच्चतम न्यायालय ने अपनी राय रखते हुए भीम सिंह, एमएलए बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य एवं अन्य[47] के मामले कहा कि गैर कानूनी गिरफ्तारी और कारावास के धब्बों को केवल व्यक्ति को जेल या गिरफ्तारी

---

43 एआईआर 1983 एससी 1086:

44 इबिड

45 बी सी ओराओं बनाम बिहार राज्य, एम.पी. जैन, भारतीय संवैधानिक कानून में उद्धृत वॉल्यूम 1 (लेक्सिसएक्सिस, गुड़गांव, भारत 6 वां संस्करण अपडेट किया गया, 2013) 1618; यह भी देखें:देवकी नंदन बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1983 एससी 1134;

46 देखें: सेबेस्टियन एम. होंग्रे बनाम भारत संघ, एआईआर 1984 एससी 1026।47 (1985) 4 एससीसी 677।

[47](1985) 4 एससीसी 677

से आजाद कर मिटाया या समाप्त नहीं किया जा सकता है।अदालत ने पीडित को रुपये 50,000/- गैर कानूनी रुप से सजा के लिए क्षतिपूर्ति के रुप में प्रदान किये परन्तु यहां पर उल्लेखनीय है कि देश में किसी भी प्रकार का कोई तंत्र नहीं है जिससे कि पीडितों को "उचित आर्थिक क्षतिपूर्ति" निर्धारित की जा सके या समान मामलों में निर्धारित की जानी चाहिए।

4.10 अब प्रश्न यह है कि यदि राज्य के अधिकारियों के द्वारा 'दुराचरण किया गया है तो क्षतिपूर्ति का भुगतान कौन करेगा - स्वंय पुलिस अधिकारी या राज्य', उच्चतम न्यायालय ने सहेली, महिला संसाधन केन्द्र एवं अन्य बनाम दिल्ली पुलिस आयुक्त एवं अन्य[48] के मामले में सरकारी कर्मचारियों के अपकृत्यों के लिए राज्य को प्रतिनिधिक रुप से जिम्मेदार बताया यानी राज्य के कर्मचारियों के अपकृत्यों के लिए क्षतिपूर्ति देने का दायित्व राज्य का ही है और यह आदेश दिया कि पुलिस के अत्याचार के कारण नौ साल के बच्चे की मृत्यु होने पर दिल्ली प्रशासन क्षतिपूर्ति का भुगतान करे; आगे उल्लेख करते हुए कहा कि दिल्ली प्रशासन के पास यह विकल्प उपलब्ध है कि वह इस राशि को जिम्मेदार पुलिस अधिकारियों से वसूल करे।[49]

4.11 उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम रवि कान्त पाटिल,[50]के मामले में राज्य की प्रतिनिधिक जिम्मेदारी के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। इस मामले में आगे महसूस किया गया कि किसी भी अधिकारी विशेष को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि भले ही ऐसा पाया गया हो कि ऐसे अधिकारी अपनी शक्ति की सीमा पार कर चुके हैं, फिर भी वे अधिकारी के रूप में ही कार्य कर रहे थे। इन मामलों ने राज्य के कर्मचारियों के अपकृत्यों के लिए क्षतिपूर्ति के भुगतान करने के लिए राज्य के उत्तरदायित्व और जिम्मेदारी को मान्यता प्रदान की लेकिन ये मामले क्षतिपूर्ति को विधि शास्त्र में स्थापित करने में एवं क्षतिपूर्ति की राशि के निर्धारण में किन कारकों पर विचार करना चाहिए इन प्रश्नों का उत्तर देने में विफल रहे।

4.12 एक महत्वपूर्ण निर्णय को अक्सर राज्य के प्रतिनिधिक दायित्व के सिद्धांत को पारदर्शी बनाने के लिए उपरोक्त वर्णित मामलों को रेखांकित करते हुए श्रेय दिया जाता है।

---

[48]एआईआर 1990 एससी 513'

[49]अपने सचिव के माध्यम से लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघ एवं अन्य बनाम दिल्ली पुलिस मुख्यालय एवं अन्य (1989) 4 एससीसी 730; जोगिन्दर कौर बनाम पंजाब राज्य, (1969) 71 पीएलआर 85।

सम्प्रभु प्रतिरक्षा के सिद्धान्त के साथ साथ राज्य के अधिकारियोंके द्वारा मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले को नीलाबती बेहरा बनाम ओडिसा राज्य[51] के मामले में रेखांकित किया गया। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में महसूस किया कि याचिका कार्यवाही में क्षतिपूर्ति का प्रदान करना शासकीय कानूनों के तहत एक उपाय है जो कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए आवश्यक दायित्व पर आधारित है और मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने पर सम्प्रभु प्रतिरक्षाका सिद्धान्त लागू नहीं होता है जबकि अशासकीय कानूनों के तहत उपलब्ध उपाय अपकृत्यों पर कार्रवाई आधारित हैं।[52] न्यायालय ने आगे महसूस किया कि ऐसे मामलों में राज्य के पास यह अधिकार है कि संबंधित अधिकारी से क्षतिपूर्ति की वसूली करे और / या उसके विरुद्ध उपयुक्त कार्यवाही के माध्यम से कानून सम्मत कार्रवाई करे।डी.के.बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[53]के महत्वपूर्ण मामले में 'पुलिस की ज्यादती और क्षतिपूर्ति प्रदान करने'के विषय पर राज्य के 'आवश्यक दायित्व' के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

4.13 संविधान द्वारा गारन्टी दिये गये मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले में सम्प्रभु प्रतिरक्षा की रक्षा का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। धारा 32 या 226 के तहत क्षतिपूर्ति के लिए दावा करना एक संवैधानिक उपाय है और उक्त रक्षा एक संवैधानिक उपाय के विरुद्ध उपलब्ध नहीं है। इसे उच्चतम न्यायालय के द्वारा उपभोक्ता शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र बनाम भारत संघ[54] के मामले में पुन: दोहराया गया था। अदालत ने कहा:

.....यह राज्य, उसके कर्मचारियों, साधन, कंपनी या व्यक्ति द्वारा कानूनों के तहत या कानूनों के तहत जारी किए गए लाइसेंस के तहत या किसी संविधान के तहत दिये गये किसी अधिकार के प्रवर्तन या कर्तव्य को पूरा करने के लिए अपनी तथाकथित शक्तियों का उपयोग करते समय किये गये अपकृत्यों के लिए उपलब्ध निवारण का एक व्यावहारिक और सस्ता तरीका है।

---

[50]एआईआर 1991 एससी 1960

[51]एआईआर 1993 एससी 1960; यह भी देखें: आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चाल रामकृष्ण रेड्डी, (2000) 5 एससीसी 712।

[52] इस मामले में अदालत ने सामान्य प्रक्रिया के तहत अपकृत्यों के कारण नुकसान के दावे से मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाले मामलों में राज्य की देयता को अलग किया, जिसमें कहा गया कि "कस्तुरीलाल (कस्तुरी लाल रालिया राम जैन बनाम यूपी राज्य, एआईआर 1966 एससी 1039) में न्यायालय अपने कर्मचारियों के अपकृत्यों के लिए संप्रभु प्रतिरक्षा की राज्य की याचिका को कायम रखने के दायित्व तक ही सीमित है।"

[53]एआईआर 1997 एससी 610

[54] एआईआर 1995 एससी 922; श्रीमती सुधा रसीद बनाम भारतीय संघ, 1995 (1) स्केल 77

4.14 नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता बहुमूल्य है, और कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार किसी को भी इसमें हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसमें किसी भी प्रकार की क्षति के लिए राज्य अपने अधिकारियों के द्वारा किये गये गैर कानूनी कृत्यों के लिए जिम्मेदार है और राज्य को अपने अधिकारियों के द्वारा नागरिकों को की गई क्षति के लिए क्षतिपूर्ति प्रदान करनी चाहिए।[55]

4.15 शक्तियों के दुरुपयोग एवं अधिकता से मौलिक अधिकारों की रक्षा के संबंध में न्यायालय ने राज्य के 'सम्प्रभू कार्यों' के मामले में बहुत ही प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण अपनाया है और इस कारण से राज्य के दायित्व के क्षेत्र को वृहद किया है। *नागरिक स्वतंत्रता के लिए लोगों का संघ बनाम भारतीय संघ एवं अन्य*[56]के मामले में न्यायालय ने कहा है कि संविधान में निर्धारित प्रक्रिया के अतिरिक्त राज्य किसी भी नागरिक को उसके जीवन एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं कर सकता है। और इस आधार पर प्रतिरक्षा का दावा नहीं किया जा सकता है कि राज्य के अधिकारियों के द्वारा नागरिक को उसके जीवन और स्वतंत्रता से वंचित राज्य की संप्रभु शक्ति का प्रयोग करते समय किया गया था। क्षतिपूर्ति का दावा 'आवश्यक दायित्व' के सिद्धान्त पर आधारित है जिसमें 'सम्प्रभु प्रतिरक्षा'उपलब्ध नहीं है।

4.16 अनुच्छेद 21 के तहत जीवन का अधिकार केवल नागरिकों के लिए ही नहीं बल्कि उस व्यक्ति के लिए भी उपलब्ध है जो कि इस देश का नागरिक भी नहीं है।[57] भारतीय नागरिकों के साथ साथ विदेशी व्यक्ति भी अनुच्छेद 21 के तहत दावा कर सकते हैं।[58] उक्त अधिकार के उल्लंघन होने पर क्षतिपूर्ति के लिए हकदारी स्वाभाविक रुप से होती है। पूर्वगामी के साथ में, रेलवे बोर्ड के अध्यक्षऔर अन्य बनाम चन्द्रिमा दास[59] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने फैसला दिया कि बांग्लादेश का नागरिक यानी एक विदेशी नागरिक भी भारत में अनुच्छेद

---

[55]धमन जॉय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1995 एससी 1795; दलबीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2009 एससी 1674

[56]एआईआर 1997 एससी 1203; नसरुद्दीन बनाम राज्य, 2001, क्रिएलजे 4925; तसलीमा बनाम दिल्ली राज्य, 161 (2009) डीएलटी 660।

[57]अनवर बनाम जम्मू कश्मीर राज्य (1997) 3 एससीसी 367।

[58]कॉमन कॉज, एक पंजीकृत संस्थान बनाम भारत संघ, एआईआर 1999 एससी 2979; राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग बनाम अरुणाचल प्रदेश, एआईआर 1996 एससी 1234।

[59]एआईआर 2000 एससी 988

21 के तहत सुरक्षा का हकदार था, उसके इस अधिकार के उल्लंघन पर वह राज्य से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए अनुच्छेद 226 के तहत हकदार है क्योंकि राज्य संवैधानिक दायित्व के तहत उसे क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए बाध्य है।

4.17 अनुच्छेद 21 के उल्लंघन करने पर क्षतिपूर्ति प्रदान करने का सिंद्धान्त आकार ले ही रहा था कि इस उपाय के तहत शामिल मामलों के विस्तार क्षेत्र की सीमाओं की समीक्षा के लिए इस दौरान *सूबे सिंह बनाम हरियाणा राज्य*[60]का मामला सामने आया जिसमें यह प्रस्ताव किया गया कि सभी मामलों में क्षतिपूर्ति प्रदाननहीं की जा सकती है। इस मामले ने क्षतिपूर्ति को केवल उन मामलों तक सीमित कर दिया जिनमें : (i) अनुच्छेद 21 का उल्लंघन सर्वविदित और अपरिवर्तनीय हो;(ii) उल्लंघन व्यापक रुप से किया गया हो और न्यायालय के अन्त:करण को झकझोरता हो; या (iii)कथित रूप से अभिरक्षा में कथित यातना के परिणामस्वरूप मौत हो गई होयाचिकित्सा रिपोर्ट मेंअभिरक्षा में यातना या दिखाई देने वाली चोट के निशान या घाव या विकलांगता को प्रमाणित किया गयाहो। इस मामले में याचिकाकर्ता ने अपने परिवारिजनों के अवैधानिक कैद, अभिरक्षा में याताना और उत्पीडन का आरोप लगाया। पूर्वगामी मानदण्डों को लागू करते हुए न्यायालय ने इस मामले में स्पष्ट और अपरिवर्तनीय साक्ष्यों की कमी के आधार पर क्षतिपूर्ति प्रदान नहीं की गई।

4.18 अनुचित कारावास, अनुचित अभियोजन जिससे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या वंचन हुआ हो, कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग, उत्पीड़न इत्यादि के मामलों में यद्धपि यह न्यायिक सिद्धांत के रूप में विकसित हुआ है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के पास पीड़ित पक्ष को क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए राज्य को आदेश देने के शक्तियां प्राप्त हैं ताकि उसके साथ किए गए अनुचित व्यवहार के प्रभाव को कम किया जा सके और दोषियों के लिए निवारक रोकथाम के रूप में इसका उपयोग किया जा सके[61] लेकिन इस प्रकार का कोई निर्धारित तंत्र (विधायी या कोई अन्य) नहीं है जिसके माध्यम से क्षतिपूर्ति का अधिकार या मात्रा निर्धारित की जा सके।उपरोक्त वर्णित मामलों में मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर क्षतिपूर्ति प्रदान करना एक शासकीय कानूनी उपाय है परन्तु भारत के संविधान में ऐसा कोई भी विशेष प्रावधान नहीं है जिसके

---

[60](2006) 3 एससीसी 178।

[61]देखें: डॉ रानी जोहर और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक रिट याचिका संख्या 2015 की 30, 3 जून 2016 का निर्णय; राम लखन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सरकार, (2015) 16 एससीसी 715; रघुवंश दीवानंचंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, एआईआर 2011 एससी 3393 । यह भी देखें: गीता बनाम लेफ्टिनेंट गवर्नर, 75 (1998) डीएलटी 822; फूलवती बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, 84 (2000) डीएलटी 177, सुनीता बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, 151 (2008) डीएलटी 192

मामलों के अनुसार प्रत्येक मामले में उपलब्ध साक्ष्यों एवं परिस्थितियों, अदालतों के मामले की सुनवाई करने के स्वभाव के आधार पर इनका निर्णय एवं निर्धारण माध्यम से राज्य के द्वारा ऐसे मामलों में क्षतिपूर्ति प्रदान की जा सके।[62]ये उपाय किया जाता है;[63] जो कि इन उपायों को स्वेच्छाचारी, सांयोगिक और अनिश्चित बना देते हैं।

4.19 जैसा कि *आदमभाई सुलेमेनभाई अजमेरी और अन्य बनाम गुजरात राज्य* के प्रसिद्ध मामले से स्पष्ट है। (अक्षरधाम मंदिर मामला),[64] जिसमें आरोपी व्यक्ति ने एक वर्ष से अधिक का समय कारावास में बिताया था। उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को एक विशेष नोट के साथ बरी करते हुए इस मामले की जांच से लेकर सजा और सजा सुनाए जाने से लेकर कारावास तक की प्रक्रिया में दुराग्रह की बात को स्वीकार किया, लेकिन उन्हें अनुचित तरीके से दोषी ठहराए जाने के लिए किसी भी प्रकार की क्षतिपूर्ति प्रदान करने में असमर्थता व्यक्त की; यही नहीं अदालत ने विशेष रुप से उल्लेख करते हुए पुलिस के व्यवहार को भी दोषी पाया जिसने वास्तिविक अपराधियों को पकडने के बजाए निर्दोष व्यक्तियों को गंभीर आरोपों में फसा दिया। हालांकि जब उच्चतम न्यायालय की दूसरी खण्डपीठ के समक्ष क्षतिपूर्ति के अनुरोध के लिए दूसरी अपील सुनवाई के लिए आई तो क्षतिपूर्ति की याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अदालत द्वारा निर्दोष लोगों को स्वत: क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है और यदि क्षतिपूर्ति दी जाती है तो यह एक खतरनाक उदाहरण स्थापित करेगा", जिसके पश्चात इस अपील को वापस ले लिया गया।[65]

4.20 इस से पूर्वगामीअन्य मामलों के विपरीत समान परिस्थिति के अन्य मामलों के सन्दर्भ में न्यायालय ने कहा कि राज्य ही क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए जिम्मेदार है। अन्यथा शायद यह इसी तरह के समान मामलों में भिन्नता के कारण ही था कि आयोग को सन्दर्भित करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा

---

[62]विबिन पी.वी. बनाम केरेला राज्य, एआईआर 2013 केरल 67।

[63]देखें: इंद्र सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1995) 3 एससीसी 702; मलकियात सिंह बनाम यूपी राज्य, (1998) 9 एससीसी 351; अजब सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2000) 3 एससीसी 521; मुंशी सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2005) 9 एससीसी 631।

[64](2014) 7 एससीसी 716; यह भी देखें: उड़ीसा राज्य बनाम दुलेश्वर बरीक, 2017 (आई) ओएलआर 824; गोपाल रामदास शेयेट बनाम महाराष्ट्र राज्य, आपराधिक रिट याचिका संख्या 2015 की 3 9 60 में दिनांक 5 मई 2017 का निर्णय।

[65]"गलत सजा के लिए क्षतिपूर्ति का एक मूल्य होना चाहिए" वायर, 30 अगस्त 2016. यहां उपलब्ध है: https://thewire.in/law/cops-judges-andterrorists। (अंतिम बार : 30 जुलाई 2018 को देखा गया)

कि "इन (सार्वजनिक कानून के तहत अनुचित तरीके से कारावास के लिए क्षतिपूर्ति प्रदान करना) सांयोगिक हैं और आसानी से सभी समान पारिस्थितिक व्यक्तियों के लिए उपलब्ध नहीं हैं।"[66]

4.21 आगे, उपर्युक्त विवेचना के अनुसार चाहे क्षतिपूर्ति प्रदान की जाए या नकार दिया जाए, अधिकतर मामलों से यह स्पष्ट नहीं होता है कि क्षतिपूर्ति को कैसे निश्चित किया जाए - आर्थिक और गैर आर्थिक कारक और विशिष्टताओं पर विचार करते हुए क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारित कैसे की जाए। पिक्षले कुछ दशकों में, उपरोक्त में से कुछ मामलों में यह राशि रुपये 50,000/- निश्चित की गई थी और इसे भीम सिंह, विधायक केस (सुप्रा) के मामले में मंहगाई को समायोजित करने के पश्चात लागू किया गया था; सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात कई मामलों में यह राशि बहुत ही मामूली होती है।[67]

ख. गैर शासकीय कानूनी उपाय

4.22 राज्य के अधिकारियों के द्वारा किये गये दुष्कृत्यों के विरुद्ध दीवानी केस राज्य के विरुद्ध आर्थिक नुकसान की भरपाई के लिए गैर शासकीय उपाय के रुप में उपलब्ध है। उच्चतम न्यायालय ने बार-बार उपरोक्त विचारित संवैधानिक उपाय पर जोर देते हुए बताया है कि राज्य के सख्त दायित्व के आधार पर यह संवैधानिक उपाय विशेष महत्व रखता है और साथ ही यह सरकारी कर्मचारियों के कष्टप्रद कृत्यों के कारण हुए नुकसान की भरपाई के लिए विशेषकर सरकारी अधिकारी के द्वारा रोजगार के क्रम में की गई लापरवाही के लिए उपलब्ध गैर शासकीय कानूनी उपाय है।[68]

4.23 राज्य के अपकृत्यों के दायित्वों के प्रश्न का परीक्षण राजस्थान राज्य बनाम विधावती एमएसटी[69] के मामले में किया गया, इस मामले को राज्य के दायित्वों के निर्धारण करने में नये आयामों का अग्रदूत माना जाता है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि राज्य अप्रत्यक्ष रुप से राज्य के एक आधिकारिक

---

[66](2018) सीसीआर 482 (डेल)।

[67]कमला देवी बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार, 114 (2004) डीएलटी 57; अशोक शर्मा बनाम भारत संघ, 2009 एसीजे 1063; प्रेमपाल एवं अन्य बनामन पुलिस आयुक्त और अन्य, (2010) आईएलआर 4 दिल्ली 416; नीमा गोयल बनाम भारतीय संघ, 2011 (125) डीआरजे 273।

[68]रुदल शाह (सुप्रा); नीलाबाती बेहरा (सुप्रा)।

[69]एआईआर 1962 एससी 933

कार चालक के उतावले और लापरवाह कृत्यों के लिए व्यवहार्य रूप से उत्तरदायी था जिसने पैदल यात्री को गंभीर रुप से घायल कर दिया था। संप्रभु शक्ति / संप्रभु प्रतिरक्षा की रक्षा के राज्य की याचिका को खारिज करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जैसे सामान्य तौर पर कोई और साधारण कर्मचारी जिम्मेदार होता है वैसे ही सरकार अपने कर्मचारियों की लापरवाही के कारण हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए उत्तरदायी होगी।

4.24 इस मामले से राज्य के उत्तरदायित्व का क्षेत्र अधिक विस्तृत हुआ है, हालांकि बाद में कस्तुरी लाल रेलिया राम जैन बनाम यू.पी. राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस में कटौती की।[70] जहां उत्तर प्रदेश राज्य के खिलाफ दायर मुकदमे में पुलिस अधिकारियों की लापरवाही के कारण सोने के गहने के गुम होने पर नुकसान के क्षतिपूर्ति की मांग की गई थी, उच्चतमन न्यायालय ने संप्रभु प्रतिरक्षा के सिद्धांत को लागू किया, और कहा कि सरकार नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं थी क्योंकि पुलिस अधिकारी एक संप्रभु कार्य कर रहे थे। संप्रभु शक्ति के प्रयोग के दौरान पुलिस अपकृत्यजन्य जिम्मेदारी से प्रतिरक्षित है; शासकीय कानून के तहत न्यायिक घोषणाओं से काफी विपरीत है जहां पुलिस दुराचरण के मामलों में संप्रभु प्रतिरक्षा के सिद्धान्त को लागू नहीं किया गया था।[71]

4.25 फिर भी, आर्थिक हानि की क्षतिपूर्ति के लिए राज्य को उत्तरदायी बनाए रखने के लिए दीवानी / धन मुकद्धमा भी एक उपाय है।उदाहरण के लिए, दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के मामलों में, जैसे *बिहार राज्य बनाम रामेश्वर प्रसाद बैद्य और अन्य*[72]के मामले मेंजहां आरोपी के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही उसके उत्पीडन करने के उद्देश्य से की गई थी, अदालत ने राज्य के कर्मचारियों द्वारा दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के लिए अभियुक्त व्यक्ति को क्षतिपूर्ति प्रदन करने के लिए राज्य को जिम्मेदार ठहराया। साथ ही, ऐसे नागरिक केसों का एक बड़ा हिस्सा भी है जहां कानून व्यवस्था को बनाए रखने का काम केवल राज्य या उसके प्रतिनिधियों द्वारा ही किया जाता है, इसे एक सार्वभौमिक कार्य माना जाता

---

[70]एयर 1964 एससी 1039।

[71]नीलाबाती बेहरा (सुप्रा); डी के बसु (सुप्रा); सीईआरसी बनाम भारतीय संघ (सुप्रा); पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टी (सुप्रा); सहेली, एक महिला संसाधन केंद्र और अन्य (सुप्रा); उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केंद्र और अन्य। (सुप्रा)

[72]एआईआर 1980 पॅट 267।

है, इससे होने वाले परिणामों के लिए राज्य उत्तरदायी नहीं होता है।[73] विधि आयोग ने "अपकृत्यों के लिए राज्य के उत्तरदायित्व" (1956) पर अपनी पहली रिपोर्ट में कर्मचारियों के अपकृत्यों के लिए सरकार की प्रतिरक्षा के क्षेत्र का भी अध्ययन किया है; और सिफारिश की है कि "राज्य के दायित्व निर्धारित करने में संप्रभु और गैर संप्रभु कार्यों के बीच पुराना भेदअब नहीं किया जाना चाहिए।"

4.26 हालांकि ये वैकल्पिक उपाय हैं, अन्य उदाहरणों की समीक्षा से यह पता चलता है कि अवैध हिरासत, अनुचित कैद, और पुलिस / अन्य जांच एजेंसियों के द्वारा किया गया "दुर्व्यवहार, अनुच्छेद 32 और 226 के तहत शासकीय कानूनी उपायों का उपयोग दीवानी मुकद्धमों के उपाय से अत्यअधिक किया गया है। विभिन्न कारणों में से एक कारण यह भी है कि पूर्वगामी कार्यों में मौलिक अधिकारों का उल्लंघन अपरिहार्य रुप से होता है जिसके लिए यह संवैधानिक उपाय है, जो कि सामान्य दीवानी कार्यवाही की तुलना में तेज़ी से होती है। इसके अलावा, संवैधानिक न्यायालयों ने विभिन्न अवसरों पर भी शासकीय कानून के उपायों पर जोर दिया है क्योंकि दीवानी मुकद्धमें या आपराधिक कार्यवाही के माध्यम से शासकीय उपायों के बावजूद राज्य के अधिकारियों के द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकारों को हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए राज्य से अपेक्षा की जाती है।[74]

4.27 उच्च न्यायालय ने डी.एस. बसु (सुप्रा) के मामले में अशासकीय कानूनी कार्यवाही से शासकीय कानूनी कार्यवाही को अलग करते हुए कहा है कि शासकीय कानूनी कार्यवाही एक अलग उद्देश्य को पूर्ण करती है यानि कि शासकीय शक्तियों को सभ्य बनाने के लिए, लेकिन नागरिकों को भी यह आश्वस्त करती है कि वे एक निष्पक्ष कानूनी व्यवस्था के तहत रहते हैंजिसमें उनके अधिकारों और हितों को सुरक्षित और संरक्षित किया जाएगा। अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकारों के स्थापित उल्लंघन के लिए संवैधानिक उपाय राज्य पर सार्वजनिक गलतियों को ठीक करने के उत्तरदायित्व के लिए हैं, जो पहली बार में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए अपने सार्वजनिक कर्तव्यों के निर्वहन में विफल रहा।

---

[73]मध्य प्रदेश राज्य बनाम साहेब दत्तामल एवं अन्य, एआईआर 1967 एमपी 246; उड़ीसा राज्य बनाम पद्मलोचन पांडा, एआईआर 1975 ओडिशा 41; मध्य प्रदेश राज्य बनाम चिरोंजी लाल, एआईआर 1981 एमपी 65; रूप लाल अबरोल बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1972 जे एंड के 22; मध्य प्रदेश बनाम प्रेमबाई और अन्य, एआईआर 1979 एमपी 85।

[74]पूर्वोक्त

4.28 इसके अलावा, एक नागरिक कार्रवाई के अनुसरण में "नुकसान" अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के तहत "क्षतिपूर्ति" से अलग हैं, क्योंकि पूर्व के अशासकीय कानून के तहत उपलब्ध अधिकार अपकृत्यों पर कार्रवाई आधारित थे, जबकि उत्तरार्द्ध के कानून नुकसान की क्षतिपूर्ति पर आधारित प्रकृति के हैं। यह नागरिक के मौलिक अधिकारों की रक्षा के सार्वजनिक कर्तव्यों का उल्लंघन करने के कारण अनुचित अपराध के लिए "मौद्रिक सहायता" प्रदान कर राहत दे रहा है जबकि बाद के कानून अनुकरणीय क्षति की प्रकृति में क्षतिपूर्ति प्रदान करते हैं। यह नागरिक के मौलिक अधिकारों की रक्षा के शासकीय कर्तव्यों का उल्लंघन करने के कारण अनुचित अपराध के लिए "मौद्रिक यहायता प्रदान कर राहत दे रहा है।

ग. आपराधिक कानूनी उपाय

4.29 अनुचित अभियोजन के लिए उपाय के संदर्भ में, पुलिस और अभियोजन के दुर्व्यवहार के कारण हुई कैद के लिए लागू आपराधिक कानूनी प्रावधान न्याय की हत्या के लिए जिम्मेदार संबंधित सरकारी अधिकारी पर ध्यान केंद्रित करते हैं। भारतीय दंड संहिता, 1860 (आईपीसी) और आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) में निहित ये प्रावधान, दोषी व्यक्ति के विरुद्ध की जा सकने वाली कार्रवाई के मौलिक और प्रक्रियात्मक रूपरेखाओं को निर्धारित करते हैं।

(i) भारतीय दण्ड संहिता, 1860

4.30 "सरकारी कार्मिकों द्वारा या उससे संबंधित अपराध" शीर्षक वाले आईपीसी का अध्याय IX, सरकारी कार्मिकों के द्वारा किए जा सकने वाले अपराधों और सरकारी कर्मचारियों से संबंधित वे अपराध जो कि उन्होंने नहीं किए हैं से संबंधित हैं। अध्याय ग्यारह "सार्वजनिक न्याय के खिलाफ झूठे सबूत और अपराध" न्याय के प्रशासन में बाधा उत्पन्न करने के लिए अपराधों का निर्धारण करता है। इन अध्यायों में निहित धाराओं में जांच, अभियोजन, सुनवाई, और अन्य आपराधिक कार्यवाही से संबंधित पुलिस, जांच एजेंसी और अभियोजन पक्ष के द्वारा दुर्व्यवहार के संभावित उदाहरण एक साथ सूचीबद्ध किये गये हैं।

(क) <u>सरकारी कर्मचारियों से संबंधित अपराध</u>

4.31 विचाराधीन मुद्दे के संबंध में, अध्याय 9 के तहत धारा 166, 166ए, और 167 उल्लेखनीय हैं। धारा 166 किसी भी व्यक्ति का अहित करने के इरादे से सरकारी कर्मचारी

द्वारा कानून को जानबूझकर भ्रमित करने को अपराध घोषित करती है। इस धारा के तहत अपराध साबित करने के लिए यह आवश्यक है कि (i) अपराधी ने "सरकारी सार्वजनिक कर्मचारी होने के नाते" कृत्य किया हो; (ii) जिन कानूनों का पालन करना सरकारी कर्मचारी के लिए बाध्य था;(iii) सरकारी कर्मचारी ने जान बूझकर इन दिशा निर्देशों का पालन नहीं किया (iv) इस तरह के उल्लंघन से से सरकारी कर्मचारी का इरादा किसी व्यक्ति को परेशान करना या उसे यह पता हो कि उसके इस कृत्य से किसी व्यक्ति को नुकसान या परेशानी हो सकती है। इस खंड को व्यापक माना गया है और सामान्यत: यह कई आधिकारिक शक्तियों के दुरुपयोग से जुड़े अपराधों को शामिल करता है। इनके तहत किये गये अपराधों के लिए जुर्माने के साथ या उसके बिना अधिकतम एक साल का कारावास का प्रावधान है।

4.32 जबकि धारा 166 एक सामान्य अर्थ में कानून की दिशा को दिग्भ्रमित करने से संबंधित है, जबकि धारा 167 में निहित अपेक्षाकृत अधिक विशिष्ट प्रावधान एक सरकारी कर्मचारी के दस्तावेज तैयार करने, गलत तैयार करने, फ्रेम, अनुवाद करने के लिए सौंपे गये कर्तव्य के विशेष उदाहरणों से संबंधित है। एक इंस्पेक्टर का समर्थन करने के लिए स्टेशन हाउस ऑफिसर (एसएचओ) द्वारा अपनी डायरी में झूठी प्रविष्टि करना उसे इस खंड के तहत जानबूझकर गलत सरकारी रिकॉर्ड तैयार करने का दोषी ठहराता है।[75] इस अनुच्छेद में अधिकतम 3 वर्ष का कारावास, या जुर्माना, या दोनों का प्रावधान किया गया है।

4.33 धारा 167 के तहत एक आरोप तय करने के लिए, यह भी आवश्यक है कि इस तरह के सरकारी कर्मचारी इरादतन गलत तरीके से दस्तावेज तैयार कर रहा था या अनुवाद कर रहा था, और उसने जानबूझकर या जानकारी के साथ किसी व्यक्ति नुकसान पहुंचाने के लिए ऐसा किया था है।इस अनुच्छेद के तहत आवश्यक है कि सरकारी कर्मचारी का इरादा किसी व्यक्ति को आधिकारिक कर्तव्य के दुराग्रह के माध्यम से परेशान करना या क्षति पहुंचाना था। हालांकि, यह उल्लेखनीय है कि जहां कृत्य स्वयं ही गैरकानूनी है, तर्क या निर्दोषता का सबूत प्रतिवादी के साथ है; और इसके असफल होने पर, कानून इसका अर्थ आपराधिक मंशा के रुप में निकालता है।[76]

---

[75]पशुपेल्ती रामदॉस बनाम सम्राट, 1911 एमडब्ल्यूएन 64।

[76] कृष्णा गोविंद पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1973 एससी 138. यह भी देखें: दत्ताजीराव भौसाहेब पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1971) 3 एससीसी 410; वुडफॉल (1770) 5 बुर. 2661।

4.34 राज्य बनाम साकिब रहमान और अन्य,[77] के मामले में सत्र न्यायालय, द्वारका, नई दिल्ली, ने अपने दिनांक 2 फरवरी 2011 के आदेश के अनुसार, यह निष्कर्ष निकाला कि संबंधित पुलिस अधिकारियों ने झूठे आपराधिक मामले में आरोपी व्यक्तियों पर आरोप लगाए, झूठेसबूतों के साथ छेडछाड इत्यादि, और न्यायालय ने आईपीसी की धारा 166 और 167 के तहत संबंधित अधिकारियों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने का आदेश दिया। अन्य मामलों के साथ ही इस मामले में भी आरोपी व्यक्ति गैर कानूनी रुप से हिरासत में था जब पुलिस अधिकारियों ने 'नकली गुप्त खबरी'के आधार पर मुठभेड की कहानी रची और बाद की तारीख में गिरफ्तारी दिखाई।

4.35 उपरोक्त के साथ ही आईपीसी की धारा 166ए भी है जिसका शीर्षक 'कानूनी दिशा निर्देशों का उल्लंघन करने वाले सरकारी कर्मचारी'है[78]। यह धारा सरकारी कर्मचारी के द्वारा तीन प्रकार की कानून की उपेक्षा के प्रावधान निर्धारित करती है जो इसके तहत अपराध के समान माना जाएगा: सरकारी कर्मचारी (क) जानबूझकर किसी भी व्यक्ति को किसी भी स्थान पर किसी अपराध या किसी अन्य मामले की जांच के उद्देश्य से उपस्थित होने से रोककर कानून का उल्लंघन करता है; (ख) किसी व्यक्ति के बारे में पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर जानबूझकर जिन कानूनों का उसे पालन करना था उनका उल्लंघन करना; और उप-धारा (ग) विभिन्न धाराओं के तहत किये गये अपराधों की प्राथमिकी दर्ज करने में असफल रहना। उपरोक्त के लिए न्यूनतम 6 माह और अधिकतम दो वर्षों की कठोर सजा, और जुर्माना लगाया जा सकता है।

4.36 यदि कोई सरकारी अधिकारी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग अपने आचरण या भूलवश करता है और परिणामस्वरुप किसी व्यक्ति को क्षति पहुंचती है तो ऐसे अधिकारी के विरुद्ध आईपीसी की धारा166(ए) के तहत कार्रवाई की जा सकती है;जब कर्तव्यों का निर्वाहन मनमर्जी या स्वेच्छारिता से किया जाता है या शक्तियों का उपयोग के कारण किसी को वेदना दी जाती है या उत्पीडन किया जाता है तो इसकी जिम्मेदारी उल्लंघनकर्ता अधिकारी की होगी और उनको तद्नुसार दण्डित किया जाएगा।[79]

---

[77]विशिष्ट केस पहचान संख्या 02405R1310232005।

[78]पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013 के माध्यम से 3 फरवरी 2013 से शामिल किया गया।

[79] देखिये:भरतभाई चंदूभाई गधिया बनाम गुजरात राज्य, गुजरात उच्च न्यायालय ने दिनांक 19 मार्च 2014 को आर/ एससीआर.ए/951/2014 में आदेश दिया। यह भी देखें: जगदेव एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2017 (2) बोमसीआर (सीआरआई) 832।

4.37 अध्याय 9 में दिये गये उपरोक्त प्रावधानों के साथ साथ, अध्याय 11 के तहत धारा 218 से 220 तक सरकारी कर्मचारियों के सरकारी कर्तव्यों के निर्वाहन के दौरान की गई अवज्ञा से संबंधित हैं। यद्धपि अध्याय 9 के तहत उक्त धाराएं को अधिक बेहतर तरीके से अध्याय 11 में शामिल किया गया है।

4.38 आईपीसी की धारा 167 की तरह ही आईपीसी की धारा 218 किसी सरकारी अधिकारी के द्वारा जानबूझकर किसी व्यक्ति के विरुद्ध झूठे / गलत रिकॉर्ड तैयार कर उसे फंसाने या क्षति या चोट पहुंचाने के कृत्य को अपराध मानती है। यह धारा 167 की तुलना में दायरे में अधिक व्यापक है क्योंकि इसमें किसी भी व्यक्ति को कानूनी सजा से बचाने या किसी संपत्ति जब्त होने से बचाने या अन्य जुर्मानों से बचने के इरादे से गलत तरीके से दस्तावेज तैयार या रेखांकित करने के कृत्य को शामिल करती है।आईपीसी की धारा 218 के तहत किये गये किसी अपराधलिए अधिकतम 3 साल का कारावासया जुर्मानाया दोनों के साथ दंडनीय है।

4.39 एक सहायक उप निरिक्षक के द्वारा सामान्य डॉयरी में झूटी प्रविष्टियां करने पर आईपीसी की धारा 218 के तहत दोषी पाया गया।[80] मौलाना अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[81]के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह महसूस किया कि यदि कोई पुलिस अधिकारी रिकॉर्ड जैसे पुलिस डॉयरी इत्यादि के साथ छेडछाड करता है तो निष्पक्ष जांच की अपेक्षा नहीं की जा सकती है; और, ऐसे अपराधों के लिए कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।[82]

4.40 आईपीसी की धारा 219 न्यायिक कर्तव्यों के निर्वहन में लगे सरकारी कर्मचारियों द्वारा शक्तियों का भ्रष्ट या दुर्भावनापूर्ण उपयोग करने से संबंधित है; न्यायिक कार्यवाही में किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा जानबूझकर कानून के विपरीत भ्रष्ट या दुर्भावनापूर्ण तरीके से किसी रिपोर्ट को बनाने या आदेश, फैसले आदि की उद्घोषणा करना। इस धारा के तहत किये गये अपराध के लिए दोषी व्यक्ति को अधिकतम 7 वर्ष की कैद या जुर्माना या दोनों सजाएं दी जा सकती हैं। इस धारा का उपयोग केवल न्यायिक प्रकियाओं के संबंध में ही किया जा

---

[80]देखिये: अशफाक अहमद, 1 9 81 सभी एलजे 871

[81] (1963) पूरक 2 एससीआर 38

[82] यह भी देखें: सोहन लाल बनाम पंजाब राज्य, पंजाब और हरियाणा के उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 24 मार्च 2011 सीआरएल में संशोधन संख्या 2011 की 31।

सकता है। आगे, इसके लिए यह आवश्यक है कि न्यायिक प्रक्रिया शुरु हो चुकी हो या लम्बित हो, जहां एक पार्टी ने दूसरी पार्टी से क्षतिपूर्ति का दावा किया हो और इस संबंध में अदालत से न्याय की मांग करते हों तो वास्तविक रिपोर्ट या आदेश, फैसला या अधिमत की वास्तविक घोषणा अवश्य की जानी चाहिए।[83] जहां धारा 112 या 145 के तहत किसी भी आदेश से पहले पुलिस द्वारा एक रिपोर्ट जमा की गई थी, सीआरपीसी बनाई गई, यह कहा गया कि रिपोर्ट धारा 219 के दायरे में नहीं आती है, आईपीसी चाहे उक्त रिपोर्ट को भ्रष्ट या गलत तरीके से बनाया गया हो।[84]

4.42 जबकि धारा 219, आईपीसी का उपयोग विशिष्ट परिस्थितियों केवल न्यायिक अधिकारियों के लिए किया जाता है।इसकी धारा 220 अधिक सामान्य हैजो कि न्यायिक प्रक्रिया से संबंधित सरकारी अधिकारियों पर लागू होती है जैसे मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी। यह धारा इस तरह के किसी अधिकारी द्वारा किसी भी व्यक्ति के मामले की सुनवाई या कैद के लिए भ्रष्ट या दुर्भावनापूर्ण प्रतिबद्धता को अपराध मानती है, यह जानते हुए कि ऐसा करना कानून के विरुद्ध है। इस धारा के तहत किये गये अपराध के मामले में अधिकतम 7 वर्ष की कैद या जुर्माना या दोनों की सजा दी जा सकती है। ज्ञात है कि कारावास कानून के विपरीत है यह "तथ्य का प्रश्न है, कानून का नहीं, और धारा 220 आईपीसी के तहत अपराध सिद्ध करने के लिए इसे साबित किया जाना चाहिए।[85]

4.43 यह धारा निर्दोष लोगों को जानबूझकर अवैध रुप से फंसाने के लिए शक्तियों के दुरुपयोग से संबंधित है। इस का लक्ष्य अधिकारियों के द्वारा व्यक्तियों को सुनवाई या कारावास से संबंधित शक्तियों के दुरुपयोग को रोकना है। यहां पर धारा 41 के तहत पुलिस की शक्ति के विषय पर चर्चा भी की जानी आवश्यक है, कुछ मामलों में वारंट के बिना किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए सीआरपीसी, संविधान के अनुच्छेद 22 (2) की आवश्यकता के अधीन यानी 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार व्यक्ति को प्रस्तुत करना। यदि उक्त अनिवार्यता की अनुपालना में पुलिस बिना किसी उचित कारण के विफल रहती है तो ऐसा कृत्य इस धारा के दायरे में आएगा और संबंधित अधिकारी को इसके तहत सजा भी दी जाएगी।

---

[83] देखें: नारपरेड्डी शेषाद्री (1938) 39 करोड़ एलजे 875

[84] देखें: कोडली पुरनचंद्रा राव बनाम लोक अभियोजक, एपी, एआईआर 1975 एससी 1925; यह भी देखें: राम नारायण, 1980 क्रिमिनल एलजेएन (एनओसी) 55 सभी।

4.44 हालांकि, धारा 220, आईपीसी, के प्रयोजनों के लिए गैरकानूनी गिरफ्तारी के प्रति प्रतिबद्धता अपने आप में कानूनी दुर्भावना के निष्कर्ष के रूप में मान्य नहीं की जाएगी; इसे कथित तौर पर साबित करने की आवश्यकता है कि संबंधित अधिकारी ने भ्रष्ट और दुर्भावना से किसी व्यक्ति को अवैध रुप से गिरफ्तार किया है।[86]

4.45 किसी भी व्यक्ति को कानून के विरुद्ध संदेहात्मक रुप से कारागार में डालना आईपीसी की धारा 220 को अभिमंत्रित करता है।[87] यदि किसी व्यक्ति को कारागार में डालना अपने आप में ही कानून के विरुद्ध है, अधिकारी की गिरफ्तार करने की कानूनी शक्तियों पर ध्यान दिये बिना यह आईपीसी की धारा 220 के तहत एक अपराध है।[88] पुलिस अधिकारी के द्वारा अपनी गिरफ्तार करने कीशक्तियों का अनावश्यक उपयोग भ्रष्टा या दुराचरण को दर्शाता है या जानबूझकर वह धारा 220, आईपीसी के तहत कानून के विरुद्ध काम कर रहा था। हालांकि जहां गिरफ्तारी कानूनी तरीके से हुई है, जानबूझकर "अवैध कृत्य में सम्मिलित करने" के लिए कोई भी व्यक्ति दोषी नहीं हो सकता है, जैसे धारा 220, आईपीसी के तहत एक सजा को न्यायसंगत साबित करने के लिए आरोपी के खिलाफ स्थापित करना जरूरी है।[89]धारा 220, आईपीसी में "दुर्भावना" शब्द की व्याख्या करते हुए अदालत ने यह पाया कि गैरकानूनी रुप से किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करनउस व्यक्ति पर ऐसे आरोपी से समझौते के लिए दबाव डालना, यही "दुर्भावना" के समतुल्य है।[90]'भ्रष्ट और दुर्भावना' अभिव्यक्ति की व्याख्या में रंगदारी वसूलने के उद्देश्य की गई गिरफ्तारी को भी शामिल किया गया है।[91]

[85] देखें: नारायण बाबाजी, (1872) 9 बीएचसी 346।

[86]सीता राम चंदू लाल बनाम मलिकर सिंह, एआईआर 1956 पेप 30; नारायण बाबाजी (1872) 9 बीएचसी 346; श्रीमती प्रिया दुबे बनाम झारखंड राज्य, झारखंड उच्च न्यायालय के आदेश संख्या सीआर एमपी 2010 के 1146।

[87]टीके अप्पू नायर बनाम अर्नेस्ट और अन्य, एआईआर 1967 मद्रास 262।

[88]अफजलुर रहमान और अन्य बनाम सम्राट, एआईआर 1943 एफसी 18।

[89]देखें: अमरसिंह जेठा, (1885) 10 बोम्बे 506. यह भी देखें: बेहारी सिंह, (1867) 7 डब्ल्यूआर(सीआर) 3।

[90]सीता राम चंदू लाल बनाम मलकियात सिंह, एआईआर 1956 पेप 30।

[91]देखें: मानसरम जियानचंद और अन्य बनाम सम्राट, एआईआर 1941 सिंध 36. इस मामले में एक सब-इंस्पेक्टर जो जुआ के आरोप में कुछ लोगों से अवैध रुप से पैसा वसूलने के लिए अभियोजन का डर दिखा कर गलत तरीके से गिरफ्तार किया था जबकि वह यह जानता था कि यह सब अनुचित है, उसे धारा 220, आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया था ।

(ख)<u>लोक न्याय के विरुद्ध झूठे सबूत और अपराध</u>

4.46 आईपीसी के अध्याय XI में उपरोक्त उल्लेखित धाराएं 218 से 220 सहित 44 धाराएं - झूठे साक्ष्य देने (धारा 191 से 200) और सार्वजनिक न्याय (धारा 201 से 229) के विरुद्ध अपराधों के संबंध में हैं। उल्लेखित विषय के संबंध में, रिपोर्ट का यह भाग धारा 191 (झूठे साक्ष्य देना), 192 (झूठे साक्ष्य तैयार करना), 193 से 195 (उपरोक्त के लिए सजा), और 211 (क्षति पहुंचाने के इरादे से झूठे आरोप लगाना) से संबंधित है।

4.47 विशेष रुप से सरकारी कर्मचारियों के लिए ही नहीं, धारा 191 और 192, आईपीसी झूठे सबूत देने या बनाने के अपराध से संबंधित हैं जबकि धारा 191 झूठे साक्ष्य देने की मात्रा को परिभाषित करती है। धारा 191, आईपीसी के अर्थ में झूठे सबूत देने के लिए, यह साबित किया जाना अतिआवश्यक है कि अभियुक्त कानूनी रूप से किसी शपथ या कानून के एक स्पष्ट प्रावधान के तहत सत्य बताने या किसी भी विषय पर घोषणा करने के लिए बाध्य हो और आरोपी के द्वारा दिया गया बयान झूटा होना चाहिए और उसे यह पता या विश्वास होना चाहिए कि यह झूट है या उसे इसकी सत्यता का विश्वास नहीं होना चाहिए। इस धारा का सार जानबूझकर झूठे बयान देने में निहित है।

4.48 रंजीत सिंह बनाम पेप्सू राज्य[92] का मामला पुलिस के द्वारा एक व्यक्ति को गैर कानूनी रुप से हिरासत में रखने का था, अभियुक्त, एक पुलिस अधिकारी ने जब बन्दी प्रत्यक्षीकरण की एक याचिका में संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी आवेदन के खिलाफ बयान देने के लिए बुलाया गया, तो उसने एक झूठा शपथ पत्र दायर कर दिया कि उस व्यक्ति को कभी पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था या उसकी हिरासत में था। अदालत ने यह कहा कि अभियुक्त ने धारा 191, आईपीसी के तहत झूटा शपथ पत्र दायर कर अपराध किया है।

4.49 धारा 192, आईपीसी इरादतन ऐसे झूठे सबूतों को बनाने से संबंधित है जो कि न्यायिक प्रक्रिया में परिलक्षित होते हैं और मामले की सुनवाई के दौरान किसी भी बिंदु पर एक गलत राय का कारण बनते हैं। अपराध का सार किसी भी पुस्तक / रिकॉर्ड में झूठी प्रविष्टि या किसी दस्तावेज या इलेक्ट्रॉनिक रुप में झूठा बयान देने में निहित है ताकि न्यायाधीश, सरकारी कर्मचारी या न्यायकर्ता किसी भी बिंदु पर गलत राय के आधार पर विचार कर सके।[93]

---

[92]एआईआर 1959 एससी 843

[93]देखें: असीक महोमेद बनाम सम्राट, एआईआर 1936 लाहौर 330।

4.50 यह पुलिस अधिकारियों के साथ-साथ सरकारी अधिकारियों का भी कर्तव्य है कि वे किसी भी मामले को अदालत के सामने बिना किसी छेडछाड या अनावश्यक विस्तार के आने दें; अभियोजन पक्ष किसी भी आरोपी व्यक्ति के दोषी होने का निर्णय नहीं करें और झूठे सबूतों के आधार पर फैसला देने के लिए न्यायालय से विश्वासघात नहीं करें।[94] यहां पर यह ध्यान देने योग्य बिन्दु है कि आईपीसी की धारा 191 एवं 192 दोनों में झूठे साक्ष्य के लिए दंडनीय "इरादतन" या "इरादतन" झूठे साक्ष्यों का निर्माण करने की 'आपराधिक मन:स्थिति' ही प्रमुख मूलतत्व है।

4.51 आईपीसी की धारा 193 से 195 तक में मौत की सजा और जीवन कारावास के साथ दंडनीय अपराध के लिए फैसला प्राप्त करने के इरादे से झूठे सबूत देने और तैयार करने से संबंधित अपराधों के लिए सजा का प्रावधान किया गया है। किसी जांच अधिकारी को हत्या के आरोपी के लिए झूठे सबूत तैयार करते हुए पकडा जाता है तो उसे आईपीसी की धारा 194 के तहत अपराधी माना जाएगा।[95]

4.52 अनुचित अभियोजन के परिणामस्वरुप न्याय की हत्या के विषय के संबंध में अगली महत्वपूर्ण धारा 211, आईपीसी है। इस धारा के तहत यह एक अपराध है कि यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को क्षति पहुंचाने के इरादे से, यदि (1) ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही संस्थापित करवाता है या (2) यह जानते हुए भी उस पर झूठा आरोप लगाए कि इस तरह की कार्यवाही या आरोपों के लिए कोई उचित या वैध आधार नहीं है। आमतौर पर वाक्यांशित, यह धारा किसी भी उस व्यक्ति पर लागू हो सकती है जो इसके तहत अपराध करता है - चाहे वह जनता हो सा सरकारी कर्मचारी। शुरुआती न्यायिक घोषणाओं में से एक में, धारा 211, आईपीसी की व्याख्या विशेष रूप से पुलिस सहित जांच एजेंसियों पर लागू करने के लिए की गई थी जब वे क्षति पहुंचाने के इरादे से किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का झूठा आरोप लगाते थे।[96]

---

[94]असीक महोदद (सुप्रा); एक आरोप स्थापित करने के लिए पुलिस द्वारा विकृत सबूतअन्यथा कमजोर हैं यह धारा 192, आईपीसी के तहत सबूतों के साथ छेडछाड का ज्वलंत मामला है। (देखें: मध्य प्रदेश राज्य बनाम बाबूलाल रामरतन और अन्य, एआईआर 1958 एमपी 55) ।

[95]देखें: दर्शन सिंह, 1985 सीआरएलजे एनओसी 71 (पी एंड एच) ।

[96]देखें: नबोदीप चिंदर सिरकार, (1869) 11 डब्ल्यूआर (सीआर) 2।

4.53 धारा 211, आईपीसी का सार निम्न शब्दों में निहित है "किसी भी व्यक्ति को क्षति पहुंचाने के इरादे से, यह जानते हुए भी कि उक्त आरोपों का कोई वैध आधार नहीं है किस भी व्यक्ति के विरुद्ध उन आधारहीन आरोपों के लिए आपराधिक कार्यवाही स्थापित करवाना" बिना किसी उचित या संभावित कारण के कार्रवाई के समानांतर दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के लिए आयोजित किया गया था। "उचित और संभावित कारण" अभिव्यक्ति को परिस्थितियों के अस्तित्व पर स्थापित पूर्ण सजा के आधार पर अभियुक्त के द्वारा किये गये अपराध में ईमानदार विश्वास के रूप में परिभाषित किया गया है, किसी साधारण समझदार और सावधान व्यक्ति को निष्कर्ष निकालने में सहायता करेगा कि आरोपी व्यक्ति पर लगाए गये अरोप सही हैं।[97]

4.54 आईपीसी की धारा 211 का उपयोग करते समय यह सिद्ध करने की आवश्यकता है कि आरोप लगाने वाला आरोपी के खिलाफ आपराधिक कानून में आरोप तय करने के इरादे और उद्देश्य से ऐसा करता है जिसके विरुद्ध बयान दिये गये हों।[98]

4.55 अभियोजनीय दुराचार के एक दृष्टान्त में, आईपीसी के अनुच्छेद 363, 366 और 376 के तहत झूठे सबूतों के आधार पर आरोपी को अनुचित तरीके से सजा दी जाती है, अदालत ने अधिकारियों को धारा 211, आईपीसी के तहत अभियोजक के खिलाफ मामला दर्ज कराने का निर्देश दिया।[99] हैड कॉन्सटेबल के द्वारा अपने वरिष्ठ अधिकारियों को झूटी रिपोर्ट देना जिसके कारण एक व्यक्ति को सजा दी गई और बाद में उसे निर्दोष पाया गया, उस हेड कॉन्सटेबल को आईपीसी की धारा 211 के तहत दोषी पाया गया।[100] जबकि दूसरी ओर, एक मामले में मजिस्ट्रेट ने सभी गवाहों एवं सबूतों को सुनने के पश्चात पुलिस अधिकारी के द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को झूटा पाया गया परन्तु इस के आधार पर आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही नहीं हुई, इसलिये आईपीसी की धारा 211 के तहत दोषी सिद्ध करने के लिए 'आपराधिक कार्यवाही का संस्थापन' के मूलतत्व पर बल दिया जाता है।

---

[97] कपूर आर. पी. बनाम प्रताप सिंह कैरॉन, एआईआर 1966 सभी 66।

[98] देखें: राज्य बनाम बाला प्रसाद, एआईआर 1952 राज 142, अदालत ने देखा कि "झूठे आरोप" शब्द आपराधिक मुकदमे के दौरान आरोपी के खिलाफ अभियोजन गवाह द्वारा झूठे सबूत प्रस्तुत करने का अर्थ नहीं दे रहा है, यह एक आपराधिक आरोप को संदर्भित करता है जो एक आपराधिक जांच प्रक्रिया की गति में नियत होता है।

[99] जितेंद्र (जेल में) बनाम यूपी राज्य, 2000 सीआर एलजे 3087 (सभी)।

[100] रेहदोय नाथ विश्वास, (1865) 2 डब्ल्यूआर (सीआर) 44।

हालांकि, तत्पश्चात अन्य मामले में, “किसी भी आपराधिक कार्यवाही को संस्थापित करने या संस्थापितकरवाने के कारण” पद की व्याख्या करते हुएन्यायालय ने कहा है कि मजिस्ट्रेट के समक्ष सूचना प्रस्तुत करना एक आपराधिक कार्यवाही संस्थापित करती है।[102] इसी तरह किसी पुलिस अधिकारी को ऐसी सूचना उपलब्ध करवाना जिस पर उसे जांच करने की शक्ति प्राप्त हो और / या सूचना जांच का कारण बने, ‘आपराधिक कार्यवाही के संस्थापन’ के समतुल्य हैं।[103]

4.56 "अपराध करने के साथ किसी भी व्यक्ति पर झूठा आरोप लगाने" को “आपराधिक कार्यवाही संस्थापित करने"[104] के पदों को विशिष्टीकृत करते हुए हरि दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[105] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि धारा 211 का दायरा दोनों को शामिल करने के लिए पर्याप्त हैं, जैसा कि आईपीसी की धारा 211 में “किसी भी व्यक्ति पर झूठा आरोप लगाने” का अर्थ है झूठा आरोप, और आपराधिक कार्यवाही और झूठे आरोपों के बीच कोई भी संबंध स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।[106] झूठे आरोप न्यायालय पर या किसी ऐसे अधिकारी पर लगाये जाने चाहिए जिसके पास जांच करने या व्यक्ति को दंडित करने की शक्ति हो, वह इन्हें परीक्षण के लिए भेजे।[107]

4.57 क्षति पहुंचाने के इरादे के साथ ही आईपीसी की धारा 211 के तहत अपराध साबित करने के लिए अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि आरोपी को यह पता होना चाहिए कि कार्यवाही या आरोपों का ‘कोई भी वैध और कानूनी आधार नहीं है’।यहां पर यह बताया गया है कि केवल यही पर्याप्त नहीं है कि आरोप लगानेवाले वाले व्यक्ति ने दुर्भावना में काम किया है, जांच के लिए बिना किसी सावधानी के या दुर्भावना से या वह यह विश्वास करे कि लगाए गये आरोपअसत्य हैं। सूचना के स्त्रोत की जांच किये बिना व्यवहार में लापरवाही दिखाना, आरोपी व्यक्ति की ओर दुर्भावना से सभी प्रासंगिक सबूत हैं लेकिन आईपीसी

---

[101] ठाकुर तिवारी, (1900) 4 सीडब्ल्यूएन 347।

[102] बोल्डर, (1914) 1 केबी 122।

[103] ननकु मोहतन बनाम सम्राट, एआईआर 1936 पट 358।

[104] यहां उपयोग किए जाने वाले "अपराध" शब्द केवल आईपीसी के तहत अपराधों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह किसी भी विशेष या स्थानीय कानून के तहत किये गये अपराधों को भी शामिल करता है।

[105] एयर 1964 एससी 1173।

[106] दशरथी मंडल बनाम हरि दास, एआईआर 1959 कलकत्ता 293।

[107] जमुना (1881) 6 कैल 620; ब्रजोबशी पांडा (1908) 13 सीडब्ल्यूएन 398।

कीधारा 211 केतहतसबसे बडी परीक्षा यह है कि आरोपी व्यक्ति यह जानता था कि कार्यवाही का 'कोई भी वैध और कानूनी आधार नहीं है' और इसे अवश्य सिद्ध भी किया जाना चाहिए।[108]

4.58 सन्तोष सिंह बनाम इजहार हुसैन,[109]के मामले में उच्चतम न्यायाल ने एक तरफ धारा 211 और दूसरी तरफ धारा 191 और 192 का तुलनात्मक समीक्षा की और यह पाया कि दोनो का मकसद एक दूसरे में दी गई वैकल्पिककार्यवाहियों को अधिव्यापित करना नहीं है।

4.59 अध्याय IX और XI, आईपीसी के उपरोक्त वर्णित प्रावधानों में उल्लेखित अपराध जैसे सरकारी कर्मचारियों द्वारा कानून का उल्लंघन, गलत दस्तावेज तैयार करना, झूठे सबूत देना, झूठे साक्ष्य बनाना, गलत तरीके से किसी व्यक्ति को अपराध के लिए आरोपी बनाना, - अक्सर गलत जांच, अभियोजन, कार्यवाही इत्यादि इस रिपोर्ट के विषय हैं; परन्तु इन धाराओं के तहत कोई अपराध निर्धारित करने के लिए आरोपी की आपराधिक मनःस्थिति (जानकारी, इरादतन) को साबित करना आवश्यक है। इन मामलों में आपराधिक मनःस्थिति को न्यायालय में स्थापित करना या साबित करना मुश्किल ही नहीं है बल्कि इससे पहले भी अक्सर ऐसे मामलों में ऐसा नहीं किया जा सका है, विकृत जांच या अन्य पुलिस और अभियोजन पक्ष की ओर से दुराचरण, पुलिस या एजेंसी और / या अभियोजकों के द्वारा असावधानी, या लापरवाही या उपेक्षा अक्सर अनुचित सजा के मामलों में देखी जाती है। इसके अलावा, किसी पुलिस अधिकारी / सरकारी कर्मचारी के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही प्रारम्भ करना भी प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों के अधीन है जैसे सीआरपीसी की धारा 197 के तहत सरकारी मंजूरी की आवश्यकता, (इस विषय में इस अध्याय के अन्त में विस्तार से चर्चा की गई है)।

---

[108]मुराद (1893) पीआर संख्या 2949; यह भी देखें: बद्री प्रसाद शर्मा बनाम शांति प्रसादशर्मा, 1982 ए सीआरआर 9; अहमद कुट्टी (1963) 1 सीआर एलजे 597 (केरल); मिर्जा हसन मिर्जा बनाम मुसामत महबूबन (1913) 18 सीडब्ल्यूएन 391; चिड्डा (1871) 3 एनडब्ल्यूपी 327।

[109]एआईआर 1973 एससी 2190।

(ग) <u>निर्णय विधि</u>

4.60 इसके बाद चर्चा से उक्त वर्णित निर्णय विधि से स्पष्ट है जहां एक व्यक्ति को अनुचित तरीके से आरोप / सजा दी गई परन्तु बाद में उसे जांच में चूक और कमियों, पुलिस और अभियोजन पक्ष के द्वारा प्रस्तुत किए गये झूठे, विकृत, छेडछाड वाले और बिना कानूनी आधार वाले सबूतों या अभियोजन पक्ष के द्वारा दायर किये गये मुकद्धमे की अविश्वनीयता के आधार पर निर्दोष पाया गया;

4.61 राज्य बनाम मोहम्मद नौशाद और अन्य (1996 लाजपत नगर बमधमाका मामले)[110] में दिल्ली उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में कहा कि पुलिस ने अनियमितता दिखायी है, और पुलिस के द्वारा जांच में गंभीर कमीयां पाई गई हैं - पुलिस ने उन गवाहों के बयानों को रिकॉर्ड नहीं किया जो इस मामले की पुष्टि करते हैं, डायरी में पुलिस के संचलन से संबंधित प्रविष्टियां नहीं करना - "सभी लापरवाह दृष्टिकोण प्रकट करते हैं।" न्यायालय ने आगे कहा कि पुलिस बल द्वारा कानून की समझ और कार्यान्वयन में दोष है। अभियोजन पक्ष के दुराचरण को रेखांकित करते हुए, न्यायालय ने यह नोट किया कि अपराध की प्रकल्पना में दोष था, आरोपी व्यक्ति के अपराध को साबित करने के लिए और न कि अभियुक्त पर अपनी निर्दोषता साबित करने के लिए सबूत प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी अभियोजन पक्ष पर है के इस सिद्धांत का उल्लंघन किया गया।

4.62 इसी प्रकार, आदमभाई सुलेमानभाई अजमेरी और अन्य (सुप्रा), के मामले में आरोपी को केवल आरोपी के अपराध स्वीकारोक्ति के आधार पर सजा देने के विरुद्ध दायर की गई अपील, उच्चतम न्यायालय ने जांच की विधि में विभिन्न कमियों और अनोखेपन को उजागर किया - अपराध स्वीकारोक्ति की प्रकृति, स्वतंत्र सबूतों का अभाव इत्यादि। सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रुप से यह कहा कि इस मामले में सबूतों के छेडछाड हुई है, जांच ऐजेन्सी के द्वारा आरोपी के विरुद्ध केस बनाने के लिए सबूतों के साथ छेडछाड का प्रयास किया गया है क्योंकि वे घटना के लगभग एक वर्ष बीत जाने के बावजूद इस मामले को हल करने में विफल रहे हैं।

4.63 मोहम्मद आमिर खान जिसे कई आतंक के मामलों में मुख्य आरोपी के तौर पर 14 वर्ष की जेल की सजा अनुचित तरीके से दी गई थी। उसके विरुद्ध सभी मामलों में एक

---

[110]दिल्ली उच्च न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या 2010 के 948, 949, 950 और 951 में दिनांक 22 नवंबर 2012 के आदेश।

समानता प्रतीत हुई कि आरोपी का विस्फोटों के साथ संबंध साबित करने वाले सबूतों की संख्या पर्याप्त नहीं थी। दिल्ली उच्च न्यायालय ने उक्त मामलों में से एक आमिर खान बनाम राज्य,[111] में उक्त तथ्यों को मानते हुए सजा को रद्द कर दिया और कहा कि अभियोजन पक्ष के द्वारा "प्रस्तुत सबूत आरोपी का संबंध लगाए गये आरोपों को साबित करने में असफल रहे हैं और जो सबूत प्रस्तुत किये है वे बहुत ही कम हैं।"

4.64 मोहम्मद अन्सारी और एवं अन्य बनाम केन्द्रिय जांच ब्यूरो[112] का मामला न्याय की हत्या के परिणामस्वरुप सबसे लम्बा कारावास का सबसे विभत्स उदाहरणों में से एक है। आरोपी मोहम्मद निसारुद्दीन को सन् 1994 में पुलिस हिरासत में लिया गया था, बाद में उसे हैदराबाद में हुए बम्ब धमाकों (अक्टूबर 1993) के लिए आरोपी बनाया गया, इसके बाद उसे दिसम्बर 1993 में मुम्बई में 5 रेलों में हुए धमाकों के लिए आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1987 (टाडा) के तहत आरोपी बनाया गया, अपराध स्वीकारोक्ति के बाद उसे अजमेर जेल में भेज दिया गया जहां उसने 23 साल बिताये - उसी समय, 2005 में अजमेर में टाडा अदालत ने उसे मौत की सजा सुनाई। 2016 में यह मामला उच्चतम न्यायालय में पहुंचा जहां सर्वोच्च अदालत ने टाडा अदालत के फैसले को यह कहते हुए पलट दिया कि केवल अपराध स्वीकारोक्ति जो कि केवल पुलिस हिरासत में ली गई थी और जिस सजा का आधार बनाया गया था का कोई कानूनी प्रमाण नहीं है और यह अस्वीकार्य है। और 23 वर्षों तक अनुचित कारावास झेलने के बाद निसारुद्दीन को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया।

4.65 जामिया के अध्यापकों द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट सॉलिडेरिटी एसोसिएशन में ऐसे मामलों को रेखांकित किया गया है जहां आरोपी व्यक्तियों को बम विस्फोट की योजना बनाने और करने, आपराधिक षड्यंत्र, हथियारों का संग्रह, आतंकवादियों के प्रशिक्षण इत्यादि के आरोप लगाये गए थे, लेकिन बाद में कमजोर जांच और निर्बल साक्ष्यों या अभियोजन पक्ष के द्वारा दायर "मामला संदिग्ध होने पर और विश्वसनीयता की कमी या प्रक्रियात्मक चूक और जांच एजेंसियों के द्वारा स्थापित कानूनी मानदंडों और नियमों का उल्लंघन, पारदर्शिता की कमी के कारण उन्हें बरी कर दिया गया।[113] रिपोर्ट में जांच और अभियोजन / कार्यवाहियों में प्रक्रियात्मक चूक और दुर्व्यवहार के एक निश्चित स्वरुप पर भी चर्चा की गई है:

---

[111] 138 (2007) डीएलटी 759।

[112] एयर 2016 एससी 2461

[113] "तैयार, दंडित, निर्दोष: 'बहुत' विशेष सेल के दस्तावेज", जामिया शिक्षकों की एक रिपोर्ट "सॉलिडेरिटी एसोसिएशन (2012) । http://www.jamiajournal.com/wp-content/uploads/2012/09/JTSA--Report-Framed-Damned-and-Acquitted-Dossiers-of-a-Very-Special-Cell.pdf (अंतिम बार: 16 अगस्त 2018 को देखा गया)।

(1) अवैध हिरासत, जैसा कि सुनवाई के दौरान बताया जाता है आरोपी को पकडने का वास्तविक समय और दिनांक पुलिस के केस में कथित तौर पर पहले का होता है।
(2) गुप्त सूचनाएं, अक्सर केन्द्र से पुलिस को मिलने वाली गुप्त सूचनाएं जिसके आधार पर आरोपी तक पहुंचा जाता है का सत्यापन या खुलासा नहीं किया जा सकता है।
(3) जनता और स्वतंत्र गवाह वास्तविक वास्तविक ऑपरेशनों में शायद ही कभी शामिल किया जाता है, यहां तक कि ऐसे मामलों में जहां आरोपी को आस पास के लोगों के साथ सार्वजनिक स्थानों पर गिरफ्तार किया गया था।

(4) ऑपरेशन में उपयोग निजी वाहनों के उपयोग से रोजनामचा को अनुरक्षित करने की आवश्यकता खत्म हो जाती है, जिससे ऑपरेशन के बारे में जानकारी को सत्यापित करना मुश्किल हो जाता है।

(5) विलंबित जब्त ज्ञापन - कुछ मामलों में यह देखा गया है कि वास्तविक जब्ती के समय यह ज्ञापन नहीं बनाया गया। इसे बाद में पुलिस स्टेशन में तैयार किया गया, अक्सर एफआईआर के लिखने उपयोग की गई स्याही और हस्तलेख एक ही पाया जाता है।[114]

(i) <u>आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973</u>

4.66 उपरोक्त चर्चित आईपीसी की धारा 132 और 197 के प्रक्रियात्मक अधिरोधों के वास्तविक प्रावधानों के लिए, सीआरपीसी शासकीय कार्य करने के दौरान न्यायाधीशों और सरकारी कर्मचारियों को उनके कार्यों के संबंध मेंकष्टप्रद मुकदमेबाजी से बचाने के लिए सुरक्षा उपाय उपलब्ध करवाती है।[115]जबकि धारा 132, सीआरपीसी पुलिस अधिकारियों के द्वारा धारा 129 से 131 सीआरपीसी के तहत किये गये किसी भी कृत्य के लिए अभियोजन चलाने के लिए सरकार की मंजूरी की आवश्यकता का प्रावधान करती है, जो एक गैरकानूनी संयोजन को नियंत्रित करती है, जिस पर शांति भंग का आरोप लगाया गया है।[116]धारा 197 में यह आवश्यक है कि किसी पुलिस अधिकारी जिस पर "अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन या सम्पादन के दौरान" आपराधिक कृत्य करने का आरोप है के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही शुरू करने से पूर्व केंन्द्र या राज्य सरकार से मंजूरी प्राप्त की जानी चाहिए।

---

[114] इबिड

[115] जयसिंह वधु सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2001 सीआरएलजे 456 (बोम्बे)।

[116] नागराज बनाम मैसूर राज्य, एआईआर 1964 एससी 269, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि धारा 132 के तहत, यदि आरोपी पुलिस अधिकारी यह साबित करने में सफल होता है कि उसने गैरकानूनी सभा को तितर बितर करने का प्रयास किया और उसने बल का प्रयोग केवल उसी स्थिति में किया जब यह प्रयास विफलता हो गया, तब उसे धारा 132, सीआरपीसी के तहत सुरक्षा प्रदान की जाएगी

4.67 सीआरपीसी की धारा 197 को अभिमत्रिंत करने के लिए एक सामान्य मार्गदर्शक सिद्धांत के रुप में उच्चतम न्यायालय ने सुब्रहण्यम स्वामी बनाम मनमोहन सिंह एवं अन्य[117] के मामले में कहा कि "..... धारा के संबंध में इन प्रक्रियात्मक प्रावधानों को इस तरीके से उपयोग किया जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार को रोकने के लिए ईमानदारी और न्याय और सुशासन के कारणों को आगे बढ़ाया जा सके"। विगत कुछ वर्षों में कई न्यायिक मामलों में सीआरपीसी की धारा 197 के दायरे का परीक्षण किया जा चुका है और सीआरपीसी की धारा 197 के तहत पुलिस अधिकारियों को सुरक्षा भी प्रदान की गई है जबकि साथ ही अपवादात्मक मामलों और परिस्थितियों के बारे में भी बताया गया है जिनमें यह सुरक्षा लागू नहीं होती है।[118] इनमें से कुछ मामलों पर यहां चर्चा की गई है।

4.68 धनंजय राम शर्मा बनाम एम.एस. उपाध्याय और अन्य[119], उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि सीआरपीसी की धारा 197 की सुरक्षा से पहले, एकआरोपी व्यक्ति द्वारा इस धारा के तहत मिलने वाली सुरक्षा के लिये दावा किया जा सकता है लेकिन उसे पहले न्यायालय को संतुष्ट करना होगा कि वह एक सरकारी कर्मचारी है " उसे उसकी नौकरी से नहीं निकाला जा सकता है क्यों कि उसे राज्य सरकार या केंद्र सरकार की स्वीकृति प्राप्त है", और उसके बाद उसकेकृत्यों के लिए की गई शिकायत, यदि उसके द्वारा किये गये हैं तो " वे कृत्य उसके आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान किये गये थे"।[120]

4.69 पी.पी. उन्नीकृष्णन बनाम पुट्टीयोत्ती अलीकुट्टी[121], अवैध हिरासत और हिरासत में यातना देने के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा

---

[117](2012) 3 एससीसी 64।

[118]बैजनाथ बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1996 एससी 220; बलबीर सिंह बनाम डी. एन. कादियान, एआईआर 1986 एससी 345; एस.बी. साहा बनाम एम.एस कोचर, एआईआर 1979 एससी 1841; मताजोग दुबे बनाम एचसी भरी, एआईआर 1956 एससी 44; अमरिक सिंह बनाम पेप्सू राज्य, एआईआर 1955 एससी 309।

[119]एआईआर 1960 एससी 745।

[120]एच.एच.बी.बी गिल बनाम किंग, एआईआर 1948 पीसी 128, अदालत ने देखा कि एक सरकारी कर्मचारी को केवल अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करने के लिए कहा जा सकता है यदि उक्त कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के दायरे में आता है।

[121]एआईआर 2000 एससी 2952, किसी भी अधिकारिक कर्तव्य या राज्य के द्वारा प्रदत्त शक्तियों या सौंपे गये दायित्वों के अनुसार अच्छे उद्देश्य के लिए कार्य करने वाले पुलिस अधिकारियों द्वारा अपने बचाव में केरल पुलिस अधिनियम की धारा 64 के तहत पुलिस अधिकारियों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही शुरू करने के विरुद्ध प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का प्रावधान किया है, अदालत ने इस प्रावधान को सीआरपीसी की धारा 197 पर आधारित माना।

197(1) के दायरे पर चर्चा करते हुए, कहा कि सवालों के घेरे में किये गये कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के बीच उचित संबंध होना चाहिए। किये गये कृत्य का कर्तव्य के साथ ऐसा संबंध होना चाहिए कि आरोपी एक उचित, और केवल झूटा दावा कर नहीं सकता हो कि उसने ऐसा अपने कर्तव्य के निर्वहन के दौरान किया था। अदालत ने एक उदाहरण के साथ बताया कि: यदि कोई पुलिस अधिकारी अदालत की मंजूरी के बिना 24 घंटे से अधिक समय तक किसीव्यक्ति को गलत तरीके से लॉक-अप में बन्द रखता है या कैदी के साथ अवैध रुप से मार-पीट करता है, तो वह अपने कर्तव्यों के बाहर काम कर रहा है, और इसलिए, धारा 197, सीआरपीसी के तहत सुरक्षा का हकदार नहीं है।[122]

4.70 इसी क्रम में, राजीब रंजन एवं अन्य बनाम आर. विजयकुमार[123] के मामले में कहा गया कि:भले ही अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वाहन के दौरान, यदि कोई सरकारी अधिकारी आपराधिक षडयंत्र का हिस्सा बनता है या किसी आपराधिक दुराचरण में शामिल होता है तो इस प्रकार का कदाचार को उसके आधिकारिक कर्तव्यों में नहीं माना जाएगा और इसलिये उसे सीआरपीसी की धारा 197 के प्रावधानों के तहत सुरक्षा प्रदान नहीं की जाएगी।[124]

4.71 विषय पर विचार करने के संबंध में उत्तराखंड संघर्ष समिति बनाम यूपी राज्य[125] को संदर्भित करने की जरूरत है, जहां अदालत ने विशेष रूप कहा कि गलत तरीके से नियंत्रण और हिरासत के कृत्यों, फर्जी बरादमगी दिखाने के लिए हथियार रखना, निहत्ते आंदोलनकारियों पर जानबूझ कर गोली चलाना, रिकॉर्ड के साथ छेड़छाड़ करना या गलत रिकॉर्ड तैयार करना, बलात्कार और छेड़छाड़ आदि कृत्य न तो किए जाते हैं, न ही आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में किए जाने के लिए कहा जाता है;

---

[122]यह भी देखें: एसएस खंडवाला (आईपीएस) अतिरिक्त डी.जी.पी और अन्य बनाम गुजरात राज्य, (2003) 1जीएलआर 802, गुजरात उच्च न्यायालय ने कहा कि आरोपी पुलिस अधिकारियों को धारा 197 के तहत सुरक्षा नहीं मिलेगी क्योंकि उनके उत्पीड़न के कृत्य उनके आधिकारिक कर्तव्य के दायरे से स्पष्ट रुप से बाहर हैं।

[123] (2015) 1 एससीसी 513।

[124]यह भी देखें: शंभू नाथ मिश्रा बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, (1997) 5 एससीसी 326।

[125] (1996) 1 यूपीएलबीईसी 461, इस मामले में बड़े पैमाने पर मानवाधिकारों का उल्लंघन किया गया था जिसमें पुलिस और अर्धसैनिक बलों ने प्रदर्शनकारियों की एक सभा पर गोलीबारी की, जिसके परिणामस्वरूप कई लोग मारे गये, सामूहिक पैमाने पर छेड़छाड़ और बलात्कार, अवैध हिरासत और बड़ी संख्या में व्यक्तियों को कैद किया गया था। यह भी देखें: एच.एच.बी. गिल (सुप्रा); अमरिक सिंह बनाम पेप्सू राज्य, एआईआर 1955 एससी 309; मताजोग दुबे बनाम एचसी भरी, एआईआर 1956 एससी 44; बलबीर सिंह बनाम डी. कादियन, एआईआर 1986 एससी 345।

और ऐसे पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध मामला दर्ज करने के लिए किसी सरकारी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय ने पुलिस के अत्याचारों से पीडित व्यक्तियों को अनुकरणीय क्षतिपूर्ति प्रदान की।

4.72 अदालतों ने निर्णय विधि की शृखंला में धारा 197, सीआरपीसी के दायरे को परिभाषित किया है और घटाया है, हालांकि, ऐसा लगता है कि उक्त धारा के तहत प्रक्रियात्मक सुरक्षा का अक्सर पुलिस अधिकारियों द्वारा दुरुपयोग किया जाता है जैसे शिकायतों या प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज नहीं करना, जिससे पुलिस या अभियोजन के दुराचार को दुरुस्त करने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।[126]

4.73 सीआरपीसी के इन प्रावधानों के अतिरिक्त, पुलिस के पास कुछ राज्य पुलिस अधिनियम और इनके अधीन बनाए गये नियमों के तहत समान प्रक्रियात्मक सुरक्षात्मक उपाय उपलब्ध हैं। आगे, कुछ उच्च न्यायालयों के नियमों में भी पुलिस अधिकारियों या अन्य सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ करने के संबंध में प्रावधान किये गये हैं।

4.74 इस विषय में आखिरी संदर्भ उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नईम,[127] के मामले में उच्चतम न्यायालय के फैसले का लिया जाना चाहिए, जिसमें पुलिस या अन्य सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों के "अनुचित व्यवहार" के बारे में न्यायालयों को टिप्पणी करते समय दिशानिर्देशों को ध्यान में रखना चाहिए" । सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में विचार करते हुए इलाहबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति मुल्ला के पुलिस आचरण पर परस्पर टिप्पणी ".....इस पूरे देश में ऐसा कोई भी कानूनहीन समूह नहीं है जिसका अपराधों का रिकॉर्ड संगठित ईकाई के रिकॉर्ड के नजदीक है जिसे भारतीय पुलिस बल के नाम से जाना जाता है.....।" और कहा कि

---

[126]"भारतीय पुलिस के उत्तरदायित्व: एक बाहरी शिकायत एजेंसी बनाना" मानवाधिकार कानून नेटवर्क (अगस्त 2009)। http://indiagovernance.gov.in/files/police_reforms.pdf पर उपलब्ध है: (अंतिम बार: 10 अगस्त 2018 को देखा गया) । यह भी देखें: "भारत में यातना 2011"। मानव अधिकारों के लिए एशियाई केंद्र (नवंबर 2011)। http://www.indianet.nl/pdf/torture2011.pdf। (अंतिम बार: 11 अगस्त, 2018 को देखा गया)

[127]एआईआर 1964 एससी 703; यह भी देखें: के. एक न्यायिक अधिकारी के मामले में:, (2001) 3 एससीसी 54; अमर पाल सिंह बनाम यूपी राज्य, एआईआर 2012 एससी 19

न्यायालयों को व्यक्तियों और प्राधिकारियों के आपत्तीजनक एवं अनुचित व्यवहार जो कि उनके समक्ष जांच हेतु आते हैं पर टिप्पणी करते समय ध्यान रखना चाहिए कि "…..(क) जिस पार्टी का आचरण प्रश्नों के घेरे में है क्या उसे न्यायालय के समक्ष या उसे अपनी सफाई देने का मौका दिया गया है (ख) क्या आचरण से संबंधित कोई प्रमाणिक सबूत है जो कि की गई टिप्पणी के समर्थन करता हो और (ग) क्या यह मामले के निर्णय के लिए आचरण में दोष निकालने के लिए अतिआवश्यक है....."

4.75 इस सन्दर्भ में सीआपीसी के तहत एक और अन्य प्रावधान है जिसका यहां शीघ्र उल्लेख किया जा सकता है वह धारा 358 - जो कि आधारहीन तथ्यों के आधार पर गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति प्रद्रान करती है। इस धारा के शब्दों से यह प्रतीत होता है कि यह आधारहीन तथ्यों के आधार पर एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति को गिरफ्तार करवाने के कृत्य को लक्षित करती है। यह अदालत को शक्ति प्रदान करता है कि वह उस व्यक्ति को क्षतिपूर्ति का भुगतान करने का आदेश दे जिसने पुलिस अधिकारी को ऐसे किसी भी "पर्याप्त आधारों" के बिना गलत तरीके से गिरफ्तार करवाया है। अर्थात यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को पुलिस के माध्यम से अनुचित तरीके से तथ्यहीन आधारों पर गिरफ्तार करवाता है तो अदालत उस व्यक्ति को पीडित उसके धन और समय की बर्बादी के कारण हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति के भुगतान के लिए आदेश दे सकती है। इस धारा के प्रावधानों का उपयोग करने के लिए, शिकायतकर्ता - शिकायत / सूचना जिस के आधार पर गिरफ्तार किया गया है के बीच सांठ गांठ होनी चाहिए।इस बात का प्रमाण होना चाहिए जो यह इंगित करे कि इसस सूचना के आधार पर आरोपी व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया है। इस बात की जांच होनी चाहिए कि यदि शिकायत की सत्यता की जांच की गई होती तो यह गिरफ्तारी नहीं हो सकती थी।[128]

4.76 व्यक्ति जिस के प्रयासों के आधार पर गिरफ्तारी हुई है को न्यायालय गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को अधिकतम रुपये 1000/- की क्षतिपूर्ति प्रदान करनेके लिए आदेश दे सकती है और इस राशि की वसूली जुर्माने के रुप में भी की जा सकती है; यदि क्षतिपूर्ति के आदेशों की अनुपालना में जुर्माने की राशि की वसूली नहीं होती है तो ऐसे व्यक्ति को अधिकतम 30 दिनों के साधारण कारावास की सजा दी जा सकती है। हालांकि अनुचित रुप से (आधारहीन) गिरफ्तारी को सम्बोधित करते हुए, यह धारा उन पुलिस अधिकारियों पर लागू नहीं होती है जो इस प्रकार की गिरफ्तारियां करते हैं चाहे वे उक्त व्यक्ति के साथ मिलकर अनुचित गिरफ्तारी में शामिल हो। आगे, इस धारा के तहत दिये जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि मामूली है और इतनी पर्याप्त नहीं है कि वे पीडित को कोई राहत प्रदान कर सके या इस से

---

[128]मल्लप्पा बनाम वीरबासप्पा और अन्य, 1977 क्रिलज 1856 (कांट।)

हुई पीडा को कम कर सके या ऐसे गलत कार्यों को रोकने के लिए निवारक की तरह काम कर सके।

(2) पुलिस अधिनियम, 1861

4.77 आईपीसी के उपरोक्त वर्णित प्रावधानों के साथ साथ, एक पुलिस अधिकारी को कानूनों और नियमों के उल्लंघनों के लिए पुलिस अधिनियम, 1861 के उपलब्ध करवाए गये उपचारित कार्रवाई के आन्तरिक पुलिस तंत्र के माध्यम से भी दण्डित किया जा सकता है। इस अधिनियम की धारा 7 जैसे प्रावधानों के साथ, जो "अपकृष्ट अधिकारियों की नियुक्ति, बर्खास्तगी आदि" से संबंधित है; और धारा 29 जो "कर्तव्य की उपेक्षा के लिए जुर्माने" से संबंधित है।

4.78 इस प्रकार की कार्यवाहियां आन्तरिक आनुशासनात्मक प्राधिकारियों के समक्ष होती हैं जो कि सबूत एकत्रित करते हैं एवं बाध्यकारी आदेश देते हैं।[129] 1861 के अधिनियम के अनुसार, इन कार्यवाहियों के आदेशों को उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। हालांकि, इस विषय पर निर्णयविधि से यह प्रतीत होता है कि इन कार्यवाहियों के तहत दिये गये आदेशों में हस्तक्षेप के संबंध में न्यायालय की शक्तियां वृहद रुप से आनुपातिकता के आधार पर दी गई सजा का मूल्यांकन करने तक ही सीमित हैं।[130]

घ. मानवाधिकार आयोग

4.79 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी)और राज्य मानवाधिकार आयोग (एसएचआरसी) की स्थापना मानव अधिकार सुरक्षा अधिनियम, 1993 के तहत की गई थी जिन्हें स्वप्रेरणा से जांच या मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों में याचिका दायर करने की शक्तियां प्राप्त हैं जो अक्सर अवैध हिरासत, गलत जांच, कैद आदि के मामलों में पाया जाता है। हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम 1993 के तहत, अगर एनएचआरसी या एसएचआरसी जांच के माध्यम से किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा मानव अधिकारों के उल्लंघन या मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोकने में लापरवाही साबित कर देते

---

[129]देखें: दयाल सिंह और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, एआईआर 2012 एससी 3046, इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने संबंधित अधिकारी को पुलिस अधिकारी के खिलाफ जांच में कर्तव्य या दुर्व्यवहार के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का निर्देश दिया, भले ही इस तरह के अधिकारी सेवानिवृत्त हो गया हो। यह भी देखें: करण सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, एआईआर 2013 एससी 2348।

हैं, तो वे संबंधित सरकार या प्राधिकारी को पीड़ितों को क्षतिपूर्ति का भुगतान करने या संबंधित अपराधियों पर मुकदमा चलाने के लिए केवल सिफारिश कर सकती हैं (धारा 18)।

4.80 1993 का अधिनियम यह निर्दिष्ट नहीं करता है कि ये सिफारिशें सरकार पर बाध्यकारी हैं या नहीं, और न ही यह एनएचआरसी या एसएचआरसी को इतना सशक्त बनाता है कि वे इस संबंध में सरकार या अधिकारियों को कोई निर्देश दे सकें। इसलिए, जांच के लिए एनएचआरसी को पुलिस और न्यायिक हिरासत में हर मौत की सूचना दी जानी चाहिए, भले ही ऐसी मौत प्राकृतिक या अन्य किसी रुप से हुई थी[131],इसकी भूमिका और शक्तियां संबंधित लोगों परमुकदमा चलाने या पीड़ित को राहत देने के लिए सरकार को सलाह देने तक ही सीमित हैं।अनुपालना करवाने के लिए शक्ति की कमी इस उपाय को दोनों मोर्चों पर अक्षम बनाती है - पीड़ितों को क्षतिपूर्ति दिलवाने में और संबंधित सरकारी कर्मचारी को जिम्मेदार ठहराने मेंमहत्वपूर्ण पहलू यानि कि मानवाधिकार और उसके उल्लंघन के साथ निपटने के दौरान, सरकार या प्राधिकारियों पर राहत या कार्यवाहियों के कार्यान्वयन के लिए एनएचआरसी की निर्भरता इसे कमजोर संस्था / तंत्र बनाती है।

4.81 जैसा कि वर्ष 2015 - 2016 के लिए एनएचआरसी की वार्षिक रिपोर्ट से स्पष्ट है, जिसमें कहा गया कि वर्ष के दौरान क्षतिपूर्ति के लिए की गई कुल 332 अनुशंसाओं में से 229 (यानी 69%) अनुशंसाओं की अनुपालना संबंधित सरकारों या प्राधिकारियों के द्वारा नहीं की गई।[132] हालांकि कानून के नियमों के सबसे महत्वपूर्ण पहलू यानि कि मानवाधिकार और इसका उल्लघंन, रामाआ की राज्यों या प्राधिकारियों पर राहत या कार्यवाही के लिए निर्भरता इसे एक कमजोर संस्थान / तंत्र बनाती हैं।

---

130 रामानुज पांडे बनाम एम.पी. राज्य एवं अन्य, (2009) 7 एससीसी 248; बी.सी चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, एआईआर 1996 एससी 484

131"पुलिस कार्रवाई के दौरान मौत के मामले में होने वाली प्रक्रिया पर दिशानिर्देश"। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग। (मई, 2010)। यहां उपलब्ध है:
http://nhrc.nic.in/documents/death%20during%20the%20course%20of%20police%20action.pdf (अंतिम बाद: 10 अगस्त 2018 को देखा गया); यह भी देखें: "कस्टोडियल डेथ / रैप्स पर"। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग। (दिसंबर, 1993)। यहां उपलब्ध है: http://nhrc.nic.in/documents/sec-1.pdf। (अंतिम बार: 10 अगस्त 2018 को देखा गया)।

132यह स्थिति 14 मार्च 2017 तक है। "वार्षिक रिपोर्ट 2015-2016"। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग। (जून 2017)। Http://nhrc.nic.in/Documents/AR/NHRC_AR_EN_2015-2016.pdf पर उपलब्ध है। (अंतिम बार: 11 अगस्त 2018 को देखा गया)। इसके अलावा, 14 मार्च 2017 तक, ग़लत सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ क्षतिपूर्ति / अनुशासनात्मक कार्रवाई के लिए आयोग की सिफारिशों की कुल 437 अनुपालन नहीं हुई, जिनमें से 299 मामले 2015-2016 से संबंधित थे, 66 मामले वर्ष 2014-2015 से संबंधित थे, और 72 मामले संबंधित थे वर्ष 2008-2009 से 2013-2014 तक थे।

अध्याय -5

न्याय की 'हत्या के मानक'

5.1 न्याय की हत्या की समस्या के समाधान के लिए विचाराधीन मुद्दे के संबंध में कानूनी तंत्र निर्धारित करने में सबसे संवेदनशील पहलु न्याय की हत्या केपरिमाण की पहचान करना है। चाहे न्याय की हत्या के मानक अनुचित अभियोजन, गिरफ्तारी, कैद, या तीनों हों परन्तु प्रश्न यह है कि "अनुचित" क्या है।

क. 'न्याय की हत्या' के लिए लागू किये जाने वाले मानक

5.2 जैसा कि आईसीसीपीआर[133] में अन्तरराष्ट्रीय कानून निर्धारित किये गये हैं,और कई पश्चिमी देशों ने न्याय की हत्या के लिए क्षतिपूर्ति के कानून में इनको (संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जर्मनी और अन्य अध्यायों में संघीय और राज्य कानूनों सहित पिछले अध्याय में चर्चा की गई है) शामिल किया है, अपील के सभी रास्ते समाप्त होने के बाद अन्तिम आदेश के आधार पर अनुचित अभियोजन के परिणामस्वरुप न्याय की हत्या होती है और तब एक नया तथ्य निकल कर सामने आता है और यह निर्णायक रुप से सिद्ध करता है कि आरोपी व्यक्ति तथ्यात्मक रुप से निर्दोष है और केवल ऐसे मामलों में ही वादी क्षतिपूर्ति के लिए पात्र होता है। उक्त मानक उन मामलों में क्षतिपूर्ति को सीमित करते हैं जिनमें वादी को सजा (पूर्ण या आंशिक रुप से) आरोपणीय है।

5.3 इसलिए न्याय की हत्या के इस मानक का उपयोग तभी किया जाता है जब अपील के सभी रास्ते समाप्त होने के बाद अन्तिम आदेश के आधार पर आरोपी को सजा दे दी जाती है और तब एक नया तथ्य सामने आता है और यह निर्णायक रुप से यह सिद्ध करता है कि आरोपी व्यक्ति तथ्यात्मक रुप से निर्दोष है;इस प्रकार न्याय की हत्या के मानक के रूप में "अनुचित सजा" (और इसके आधार पर सजा की पीड़ा) को मान्यता दी जाती है। यदि इस मानक को लागू किया जाता है तो यह भारत में आपराधिक न्याय प्रणाली में प्रणालीगत कमियों पर विचार करने में असफल होगा।

5.44 सबसे पहले, इस मानक के अधिकार क्षेत्र में न्याय की हत्या के प्रकार शामिल नहीं होगे जैसे कि एक आरोपी व्यक्ति को निर्दोष होने बावजूद भी सजा भुगतनी पड़ सकती है यद्यपि उन्हें अंततः बरी कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, अवैध और अनुचित तरीके से

---

[133]अनुच्छेद 14(6), आईसीसीपीआर (पूर्वोक्त)

गिरफ्तारी, पुलिस हिरासत में यातना, लम्बा कारावास, जमानत से बार बार इनकार करना इत्यादि। एक शर्त है कि सभी "अपील के मार्ग समाप्त हो जाएं और जिसके बाद एक नया तथ्य दिखाता हो कि न्याय की हत्या हुई है" आपराधिक मुकदमे / अपील प्रक्रिया में देरी की वजह से भारतीय परिस्थितियों में यह उपयोगी नहीं हैं; अभियुक्त को जेल में (या अन्यथा पीड़ित) अपराध के लिए निर्धारित सजा की अवधि तक या उससे अधिक का समय जेल में व्यतीत करना पड सकता है और उसे अंततः बरी कर दिया जाता है।

5.5 इस मानक को लागू करने में दूसरा मुद्दा (अंतिम) सजा के बाद "तथ्यात्मक निर्दोषिता साबित करने वाले नये तथ्य" के मापदण्ड का है। अधिकांश पश्चिमी न्यायपालिकाओं में इस मानक का उपयोग करते हुए, अपनी उन्नत फोरेंसिक जांच प्रणाली का उपयोग करते हुए एवं वास्तविक रूप से निर्दोषता अक्सर डीएनए प्रौद्योगिकी / साक्ष्य के उपयोग के माध्यम से साबित की जाती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में, 1990 के दशक से पहले से ही गंभीर अपराधों को हल करने के लिए एक प्रभावी उपकरण में फोरेंसिक विज्ञान और कंप्यूटर प्रौद्योगिकी को समाहित करने के उद्देश्य से संयुक्त डीएनए इंडेक्स सिस्टम (सीओडीआईएस) है।[134] इसी तरह, यूनाइटेड किंगडम में, राष्ट्रीय डीएनए डाटाबेस (एनडीएनएडी) है, और आपराधिक न्याय और लोक आदेश अधिनियम है जो जांच प्रक्रिया शुरू होने से पहले पुलिस को गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के डीएनए नमूने लेने की अनुमति देता है ताकि प्रक्रिया तेज हो सके, और निर्दोषों को बचाया जा सके। हालांकि, भारत में, फोरेंसिक जांच प्रणाली अच्छी तरह से विकसित नहीं हुई है, और आपराधिक जांच और कार्यवाही में डीएनए आधारित प्रौद्योगिकी का उपयोग अभी तक निचले स्तर तक नहीं पहुंचा है, निर्दोषों को बचाने की दिशा में योगदान देने वाले डीएनए आधारित साक्ष्य की संभावना बहुत सीमित है।

5.6 तीसरा, इस मानक में उन मामलों के क्षतिपूर्ति के दावों को शामिल नहीं किया गया है जहां आरोपी व्यक्ति पर सजा आंशिक या पूर्ण रूप से आरोपणीय थी; उदाहरण के लिए, निर्दोष होने के बावजूद वादी के द्वारा अभियोजन पक्ष का करणीय संबंध।यदि यह लागू

---

[134]मैरीलैंड बनाम किंग, 133 एस सीटी 1958 (2013) के मामले में यूएस उच्चतम न्यायालय के हालिया फैसले से यह पुष्टि हुई थी कि जिसमें यह माना गया था कि एक गंभीर अपराध के लिए गिरफ्तार करने वाले अधिकारियों के पास यह शक्ति है कि वे गिरफ्तार किये गये व्यक्ति के डीएरनए के संबंध में गहन जांच और विश्लेषण करने के लिए अधिकृतहैं और चौथे संवैधानिक संशोधन के तहत यह वैध है। देखें: भारत के विधि आयोग, रिपोर्ट संख्या 271 "मानव डीएनएप्रोफाइलिंग - डीएनए-आधारित प्रौद्योगिकी के उपयोग और विनियमन के लिए एक मसौदा विधेयक "(2017)।

किया गया है, तो यह अपवर्जन राहत मामलों से अयोग्य होगा जहां आरोपी को बलपूर्वक अपराध स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ता है और वे निर्दोष होने के बावजूद ऐसा करते हैं। और यह भारत में एक आपराधिक जांच के लिए स्थानिक परिपाटी है।[135]

5.7 इसके अलावा, अगर गलतफहमी के कारण किसी अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दोषी ठहराते हुए समझा जाता है जिस अपराध के लिए वे वास्तव में निर्दोष थे, तो इस से निर्दोषों का अनुक्रम बनेगा - वे लोग जो तथ्यात्मक रुप से निर्दोष थे और वे लोग जो निर्दोष नहीं थे। वर्तमान में, भारतीय कानूनी व्यवस्था किसी ऐसे व्यक्ति को निर्दोष मानती है जिसे अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया गया है। निर्दोष व्यक्तियों की श्रेणियां बनाने से निर्दोषता की यह धारणा संशय में होगी और गंभीरता से उन लोगों को नुकसान पहुंचाएगी जो यह सिद्ध नहीं कर सकते हैं कि वे वास्तव में निर्दोष थे। यह विशेष रूप से समस्याग्रस्त है क्योंकि, जैसा ऊपर बताया गया है, तथ्यात्मक निर्दोषता साबित करना बहुत मुश्किल है।

5.8 इस तरह से, अनुचित सजा एक बहुत ही उच्च मानक है, और न्याय की हत्या के कई रूप हैं जो कि उत्पन्न होते हैं, तब जब कोई सजा नहीं दी जाती है। इसलिए यह मानक भारतीय संदर्भ में लागू करने के दृष्टिकोण से समावेशी होगा।

5.9 'अनुचित तरीके से कारावासा' दूसरा मानक है जिसके परिणामस्वरुप न्याय की हत्या होती है - जहां कुछ लोग कारावास में उस अपराध के लिए होते हैं जिनके लिए उन्हें अन्ततः दोषी, अभियोजित या यहां तक कि उन पर आरोप भी नहीं लगाया जा सकेगा। यह मानक न्याय की हत्या के प्रावधानों का उपयोग उन सभी निर्दोषता के मामलों में करेगा जिनमें व्यक्ति ने कारावास में कुछ समय या बहुत अधिक समय बिताया है यानि कि वे सभी मामले जिनमें सुनवाई बहुत लम्बे समय तक चलने के बाद आरोपी को निर्दोष पाया जाता है।

5.10 हालांकि न्याय की हत्या के बहुत ही गंभीर रुप पर चर्चा करते हुए यह मानक अधिक समावेशी और अंतर्निहित समावेशी दोनो रुप में होगा। पहला, क्योंकि सभी निर्दोषता के मामले अनुचित अभियोजन के परिणामस्वरुप नहीं होंगे; निर्दोषता अन्य कारणों के आधार पर भी सिद्ध की जा सकती है जैसे तथ्यात्मक या कानूनी गलतियां, या आरोपों को उचित सन्देह से परे सिद्ध न कर पाने की अभियोजन पक्ष की अक्षमता, या आरोपी को संदेह का

---

[135]देखें: अदंबाई सुलेमानभाई अजमेरि (सुप्रा); और मोहम्मद जलीस अंसारी एवं अन्य, (सुप्रा)।

लाभ के आधार पर निर्दोष मान लिया जाए। परन्तु यह मानक उन सभी मामलों को समाहित करेगा जिनमें आरोपी ने कारावास में कुछ या अधिक समय बिताया है और बाद में उसे निर्दोष पाया गया हो। उपरोक्त का एक उपसिद्धान्त यह भी है कि इस के कारण उन लोगों को भी राहत मिल सकती है जो कि तथ्यात्मक रुप से दोषी हो लेकिन गवाहों के मुकर जाने आदि जैसे प्रक्रियात्मक कारणों से किसी व्यक्ति को बरी कर दिया जाता है तो इस तरह, अभ्यास में यह मानक अपने इच्छित उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाएगा।

5.11 दूसरा, केवल अनुचित तरीके से दिय गये कारावास को ही न्याय की हत्या का मानक बना देने से उन अनुचित अभियोजनों (अन्त में निर्दोष पाया जाने) के मामलों को अलग कर देगा जहां आरोपी को जमानत मिल जाती है और / या कारावास में नहीं रहना पडता है; लेकिन, फिर भी ऐसे अनुचित अभियोजनों / आरोपों के कारण, दीर्घकालीन सुनवाई, सामाजिक बदनामी, रोजगार छीन जाना, कानूनी खर्चे और मानसिक एवं शारीरिक पीडा इत्यादि का सामना करना पडता है। अनुचित कारावास का यह मानक इस तरीके से अंतर्निहित समावेशी हीकहलाएगा।

5.12 तीसरा मानक अनुचित अभियोजन का है। यह मानक न्याय की हत्या की पहचान करता है क्योंकि पुलिस या अभियोजन पक्ष (प्रक्रियात्मक) कदाचार जिसके कारण दुर्भावनापूर्ण या लापरवाह जांच या निर्दोष व्यक्ति का अभियोजन किया जाता है। यह उन मामलों को लक्ष्य करता है जिनमें पुलिस या अभियोजन पक्ष ने दुर्भावाना, झूटी या लापरवाही से जांच या अभियोजन ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध किया है जो बाद में निर्दोष पाया गया था।

5.13 यह मानक इस जांच पर निर्भर करता है कि आरोपी व्यक्ति को अपराध के लिये दोषी नहीं पाया गया, परन्तु पुलिस और / या अभियोजन जांच, आरोप और / या अभियोजन में व्यक्ति के विरुद्ध किसी भी प्रकार से दुराचार में संलिप्त थे। चूंकि इस मानक के लिए मुख्य आधार अनुचित अभियोजन है, यह दोनों प्रकार के मामलों को समाहित करेगा जहां व्यक्ति ने कैद में समय बिताया है साथ ही साथ जिसने कैद में समय नहीं बिताया है; और जिन मामलों में निचली अदालतों के द्वारा आरोपी को निर्दोष बरी कर दिया है या वे मामले जिनमें आरोपी को एक या एक से अधिक न्यायालयों के द्वारा दोषी करार दिया गया है परन्तु अन्ततः उसे निर्दोष पाया गया।

5.14 भारतीय संदर्भ में, अनुचित अभियोग के मानक न्याय की हत्या के मामलों की पहचान करने के लिए सबसे प्रभावी होने चाहिए क्योंकि ये प्रक्रियात्मक और पुलिस और अभियोग संबंधी दुराचारों को प्रत्यक्ष रुप से लक्ष्य करते हैं जो कि तथ्यात्मक गलतियों का एक प्रमुख

स्त्रोत के रुप में प्रकट होता है जिसके कारण लोगों को उस अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है जो उन्होनें कभी नहीं किया। जैसा कि इस रिपोर्ट में पूर्वोक्त मामलों पर चर्चा से स्पष्ट है (अध्याय 4 - वर्तमान परिदृश्य - समीक्षा एवं अपर्याप्ताएं), ऐसे मामलों को प्रकाश में लाते हैं जिनमें पुलिस, जांच ऐजेन्सी, और / या अभियोजनीय दुराचार के कारण अनुचित अभियोजन चलाया गया और ऐसे लोगों को अन्ततः दोषी सुनवाई / अपील में नहीं पाया गया, कई न्यायालयों के आदेश भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

5.15 संदर्भ विशेष सीबीआई अदालत के 31 मई 2018 के आदेश का लिया गया है जिसमें सीबीआई बनाम ओम प्रकाश अग्रवाल और अन्य[136]के मामले में न्यायालय कहा कि एक बैंक धोखाधड़ी के मामले में कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग, विवेकाधिकार और अधिकार क्षेत्र का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया गया है और निर्दोष व्यक्तियों की गिरफ्तारी में आईओ (जांच अधिकारी) के द्वारा कानून के शासनादेश का उल्लंघन किया गया है; जिन्हें 14 साल के लंबी सुनवाई के बाद किसी भी संदिग्ध साक्ष्य की कमी के कारण बरी कर दिया गया था। न्यायालय ने विशेष रुप से कहा कि:
यह चौंकाने वाला तथ्य है कि जांच अधिकारी आरोपी बैंक अधिकारियों द्वारा शक्तियों के दुरुपयोग या प्रक्रियाओं का उल्लंघन या गैर अनुपालना के संबंध में किसी निष्कर्ष पर आने के बजाए उनके खिलाफ चार्ज शीट दर्ज करने का फैसला किया।

5.16 इस मानक का प्रमुख निर्धारक कारक पुलिस, जांच ऐजेन्सियों और / या अभियोजन पक्ष के द्वारा कार्यवाही में किया जाने वाला कदाचार है जिसके कारण और / या आरोपी को अनुचित रुप से अभियोजन का सामना करना पडता है, जो बाद में अपराध के लिए दोषी नहीं पाए जाते हैं।

ख. **अनुचित अभियोजन क्या है?**

5.17 अनुचित अभियोजन जैसा कि ऊपर बताया गया है, न्याय की हत्या के मामले होते हैं जहां प्रक्रियात्मक दुराचार - पुलिस या अभियोगात्मक, दुराचारी या लापरवाही के कारण निर्दोष व्यक्तियों को अनुचित अभियोजन का सामना करना पडता है और न्यायालय के विचार करने या जांच पडताल करने पर वे अन्ततः निर्दोष साबित होते हैं। अंतर्निहित भावना यह है कि ऐसे व्यक्तियों इन कार्यवाहियों के अधीन पहले स्थान पर नहीं रखा जाना चाहिए था।

---

[136] सीसी संख्या 39/2016 (विशिष्ट केस आईडी संख्या: DLST010000112003) सविता राव, विशेष कोर्ट में न्यायाधीश, (पीसी अधिनियम) सीबीआई 01, (दक्षिण) साकेत न्यायालय: नई दिल्ली

5.18 यह खंड उन न्याय की हत्या के उन रूपों से संबंधित है जिनमें उक्त पुलिस और अभियोजन पक्ष के दुराचरण साफ प्रकट होते हैं। पहले और अन्य तुलनात्मक उदाहरणों की समीक्षा से पता चलता है कि उक्त कि दुराचरण व्यापक रूप से प्रक्रियात्मक नियमों की अवहेलना के रूप में सामने आता है जैसे जानकारियों का अनुचित प्रकटीकरण; झूटा साबित करना या झूठे सबूत रखना या गलत सबूत बनाना; गवाह या सबूतों को रोकना, दोषमुक्ति संबंधी सबूत छिपाना या नष्ट करना; अपराध स्वीकार करने के लिए मजबूर करना / वसूली करना या कानून की अन्य प्रक्रियाओं का दुरुपयोग करना। मौजूदा आपराधिक कानूनी तंत्र में, ऐसे दुराचारों की श्रेणियों को निर्धारित करने के लिए भारतीय दण्ड संहिता (भादसं) के अध्याय 9 एवं 11 में दिये गये प्रावधानों का सन्दर्भ ग्रहण करना चाहिए। (अध्याय 4 वर्तमान परिदृश्य - समीक्षा एवं अपर्याप्तताएं में विस्तार से चर्चा की गई है।)

5.19 उपरोक्त पर आधारित प्रक्रियात्मक दुराचारों की एक उदाहरणात्मक सूची में निम्न को शामिल किया जाएगा:

(1) कानूनी कार्यवाही में प्रस्तुत करने के लिए या कानून के द्वारा चलाई गई किसी अन्य कार्यवाही में कोई भी झूटा या गलत रिकॉर्ड या दस्तावेज बनाना या गढना;

(2) शपथ के द्वारा या कानून के किसी प्रावधान के द्वारा कानून के द्वारा साक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अधिकृत व्यक्तियों के द्वारा झूटी घोषणा या बयान देना;

(3) जब कानूनी रुप से शपथ के द्वारा या कानून के किसी प्रावधान के द्वारा राज्य को सत्य बताने के लिए बाध्य हो तब भी अन्यथा झूठे सबूत प्रस्तुत करना;

(4) न्यायिक कार्यवाही में या कानून के द्वारा चलाई गई किसी अन्य कार्यवाही में कोई भी झूटा सबूत गढकर प्रस्तुत करना;

(5) न्यायिक कार्यवाही में या कानून के द्वारा चलाई गई किसी अन्य कार्यवाही में किसी भी सबूत को नष्ट करना ताकि उसे प्रस्तुत नहीं किया जा सके।

(6) किसी व्यक्ति के विरुद्ध झूठी आपराधिक कार्यवाही शुरु करवाने के लिए आरोप लगाना या स्थापित करना या कार्यवाही के कारणों को उत्पन्न करना।
(7) कानून के विरुद्ध किसी व्यक्ति पर केस चलाना या जेल में डालना;

(8) बिन्दु संख्या 1 से 7 तक में शामिल नहीं किये गये कानून के दिशा निर्देशों का किसी भी रुप में उल्लंघन करना जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति को क्षति पहुंची हो।

अध्याय -6
निष्कर्ष और सिफ़ारिशें

क. निष्कर्ष

6.1 न्याय की हत्या के रूप में "अनुचित अभियोजन" के मानक की पहचान और "अनुचित तरीके से" पद की रुप रेखा निर्धारित करने के बाद, यह अध्याय उक्त हत्या के सुधार पर चर्चा करता है यानि कि कैसे उक्त की क्षतिपूर्ति की जा सकती है क्योंकि केवल निर्दोषता ही काफी नहीं है। इस अध्याय में, अनुचित तरीके से अभियोग के परिणामस्वरुप न्याय की हत्या को सुधारने के लिए आयोग की सिफारिशें इस रिपोर्ट में दी गई हैं।

6.2 किसी व्यक्ति को अनुचित तरीके से अभियोजित किया जाता है हालांकि बाद में निर्दोष होने के कारण उसे जेल से अपनी उसी जिन्दगी में वापस जाने के लिए छोड दिया जाता है - क्या यह वास्तव में उस व्यक्ति के लिए उसी जिन्दगी में वापस लौटना संभव है - जो उसकी जिन्दगी पहले थी वह अनुचित अभियोजन के कटु अनुभवों के अधीन थी। किसी ऐसे व्यक्ति के लिए जिस पर किसी अपराध का आरोप लगाया गया, जिसे आपराधिक कार्यवाही (अक्सर लंबे समय तक) का सामना करना पडा हो, जिसका नाम और प्रतिष्ठा ऐसे आरोपों और / या दोषी होने के कारण धूमिल हुई जो उसने किया ही नहीं है, उसने जेल की सजा उस अपराध के लिए काटी जो उसने किया ही नहीं था, निर्दोष होने के बावजूद अभी भी उसके जीवन में एक उग्र लड़ाई बाकी है।[137]

6.3 उसके द्वारा जेल बिताए गए वर्षों, सामाजिक कलंक, मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक उत्पीड़न, और कानूनी लडाई में खर्च किए गए व्यय आदि के लिए प्रतिपूर्ति की जरूरत है। न्याय की हत्या के निर्दोष पीड़ितों और अनुचित अभियोजन से पीड़ित व्यक्तियों के पुनर्वास, जीवन में दुबारा समायोजन,औरसमाज में फिर से जुड़ने के लिए राज्य सरकार के द्वारा क्षतिपूर्ति सहायता की आवश्यकता है।

6.4 आईसीसीपीआर के अनुच्छेद 14 (6) के साथ संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति की सामान्य टिप्पणी 32 (सुप्रा) को पढ़ने पर जो कि न्याय की हत्या से संबंधित है के अनुसार इस तरह की'हत्या' के सिद्ध मामलों के पीड़ितों को "कानून के अनुसार" क्षतिपूर्ति प्रदान की

---

[137]"कैदी के लिए, मुकदमे की सुनवाई के उद्देश्य से कारावास उतना ही अशोभनीय है जितना कि अपराध के लिए सजा के रुप में कारावास क्योंकि समाज की अपमानजनक उंगली और समाज की ओर से बदनामी भरी आंखें दोनों के बीच कोई फर्क नहीं होता है ...", थाना सिंह बनाम उच्चतम न्यायालय केंद्रीय ब्यूरो ऑफ नारकोटिक्स (सुप्रा)

जानी चाहिए। ये प्रावधान सामूहिक रूप से राज्यों का दायित्व निर्धारित करते हैं कि वे ऐसा कानून बनाए जो कि यह सुनिश्चित करे कि उक्त पीड़ितों को क्षतिपूर्ति निश्चित "उचित समय सीमा में" प्रदान की जा सके। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है, यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी समेत कई देशों ने इस वचनबद्धता को कानून में परिवर्तित कर दिया है, जहां राज्य ने न्याय की इस तरह से हत्या के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए सांविधिक जिम्मेदारी ग्रहण की है। भारत ने वर्ष 1968 में आईसीसीपीआर की पुष्टि की (कुछ शर्तों के साथ) लेकिन अभी तक अपने दायित्वों का पालन और न्याय की हत्या से पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए कानून बनाना अभी बाकी है।

6.5 आईसीसीपीआर की पुष्टि करते हुए भारत के द्वारा रखी गई शर्तों में से एक शर्त यह भी थी कि भारतीय कानूनी व्यवस्था में गैरकानूनी गिरफ्तारी और हिरासत के पीड़ितों के लिए क्षतिपूर्ति के लिए कोई भी अधिकार नहीं है।[138] हालांकि, बाद में न्यायिक निर्णयों के आधार पर, न्याय की हत्या के परिणामस्वरूप जीवन के अधिकार का उल्लंघन, अनुचित अभियोजन सहित व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन के लिए क्षतिपूर्ति को निवारक उपायों के रूप में पहचाना गया; यद्यपि, राज्य के खिलाफ संवैधानिक यातना के दावों को सार्वजनिक कानून के तहत, संवैधानिक न्यायालयों में दायर किया जाना चाहिए अर्थात सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय में।

6.6 रुदल शाह (सुप्रा), निलाबाती बेहरा (सुप्रा), डी.के.बसु (सुप्रा) से 2016 के डॉ. रीनी जौहर (सुप्रा) के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने राज्य से उचित क्षतिपूर्ति वसूलने के उपायों को मान्यता दी है, जिससे मौलिक अधिकारों के उल्लंघन को रोका जा सकता है "... मौद्रिक क्षतिपूर्ति के भुगतान से उल्लंघन के प्रभाव को कम करने के लिए" [139]।पीडा और अपमान के लिए मौद्रिक क्षतिपूर्ति को "विमोचन विशेषता" [140] के रूप में उपयोग करना; "... एक उचित और वास्तव में प्रभावी और कभी-कभी शायद स्थापित उल्लंघन के निवारण के लिए एकमात्र उपयुक्त उपाय ...। मृत पीडित व्यक्ति के परिवार के सदस्यों के घावों पर मरहम लगाने के

---

[138] देखें: "अनुचित अभियोजितों / कारावास के पीड़ितों के लिए क्षतिपूर्ति और पुनर्वास के लिए एक तंत्र बनाने के लिए, जूरी की रिपोर्ट, निर्दोषों पर पहली पीपुल्स ट्रिब्यूनल"। इनोसेंस नेटवर्क इंडिया (अक्टूबर 2016)। यहां उपलब्ध है: http: //jtsa.in/document/Innocence%20Network%27s%201st%20Popleople27s%20Tribunal%20-%20Jury%20Report.pdf) (अंतिम बार 25 जुलाई 2018 को देखा गया)।

[139] रुदल शाह (सुप्रा)।

[140] डॉ. रीनी जौहर (सुप्रा)।

लिए जो कि परिवार का इकलौता कमाऊ सदस्य हो सकता है।[141] पिछले कुछ वर्षों में, इस विचार को विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा भी प्रतिबिंबित किया गया है जैसा कि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ के 6 जुलाई 2018 के दुर्गा उर्फ राजा बनाम मध्य प्रदेशराज्य[142] और नंदू उर्फ नंदकिशोर बनाम मध्य प्रदेश राज्य, [143] के मामलों के आदेश में भी देखा गया थाजहां अपीलकर्ता जो कि निर्दोष हैं और उनको घटिया जांच और विकृत अभियोजन के कारण पीडा हुई है, वे राज्य से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के पात्र हैं।

6.7 उपरोक्त के बावजूद, वर्तमान में उपलब्ध उपायों के तहत, उक्त न्याय की हत्या के लिए क्षतिपूर्ति केदावे और अनुदान अभी भी एक जटिल और अनिश्चित हैं। शासकीय कानून के तहत (जैसा कि अध्याय 4 वर्तमान परिदृश्य - समीक्षा एवं अपर्याप्तता में पहले भी चर्चा की जा चुकी है) पुलिस और अभियोजनीय दुराचार के कारण मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर राज्य के दायित्व अभिमंत्रित हो सकते हैं (जैसा कि निर्णय विधि पर चर्चा की गई है); परन्तु क्षतिपूर्ति की मात्रा एवं राशि विवेकाधिकार पर ही निर्भर करती है और इसमें पारदर्शिता की कमी है। दूसरे शब्दोंमें, शासकीय कानूनों के तहत क्षतिपूर्ति पर न्यायशास्त्र के इतने दशक बीत जाने के बावजूद अभी तक इस प्रकार का कोई विधायी सिद्धान्त नहीं बनाया गया है जिस के आधार पर क्षतिपूर्ति या इसकी राशि का निर्धारण किया जा सके।

6.8 यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अनुच्छेद 21 "जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता" की रक्षा करता है और न्यायिक घोषणाओं के आधार पर, "जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता" से वंचित करना उपरोक्त सार्वजनिक कानून को अभिमंत्रित करता है, लेकिन जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के उल्लंघन के लिए राज्य द्वारा क्षतिपूर्ति देने के लिए भारत के संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है (जैसा कि रिपोर्ट में पहले भी उल्लेख किया गया है)। इस तरह, वर्तमान में उपलब्ध उपाय राज्य पर क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए केवल अनुग्रह आधारित दायित्व उत्पन्न करते हैं, न कि वैधानिक दायित्व। जिसमें से एक प्राकृतिक उपसिद्धान्त यह है कि न्याय की हत्या के पीडित व्यक्तियों को राहत पाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों से संबंधित क्षेत्राधिकार के तहत न्याय के लिए गुहार लगानी पडती है, फिर भी ऐसे पीड़ितों / दावेदारों के लिए क्षतिपूर्ति का कोई सांविधिक अधिकार नहीं है।

---

[141] डी के बसु (सुप्रा); यह भी देखें: " फर्स्ट पीपुल्स निर्दोषों पर ट्रिब्यूनल, अनुचित अभियोजन / सजा के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति और पुनर्वास के लिए एक तंत्र की ओर जूरी की रिपोर्ट, इन्नोसेंस नेटवर्क इण्डिया (अक्टूबर 2016); http://jtsa.in/document/Innocence%20Network%27s%201st%20People%27s%20Tribunal% 20% 20Jury% 20Report.pdf) पर उपलब्ध है। अंतिम बार 25 जुलाई 2018 को देखा गया।

[142] 2008 की आपराधिक अपील संख्या 812।

[143] 2008 की आपराधिक अपील संख्या 866।

6.9 आपराधिक न्याय प्रणाली, जैसा कि यह प्रतीत होता है, अनुचित अभियोजन के परिणामस्वरुप हुई न्याय की हत्या से पीड़ितों को राज्य से प्रभावी प्रतिवचन प्रदान नहीं करता है। जैसी अवस्था है, इस मुद्दे पर राज्य की जिम्मेवारी निर्धारित करने वाली कोई वैधानिक या कानूनी योजना नहीं है। इसके अलावा, इस मुद्दे की स्थानिक और संवेदनशील प्रकृति और उपलब्ध उपचारों की स्पष्ट अपर्याप्तताओं को ध्यान में रखते हुए राज्य मशीनरी के हाथों न्याय की हत्या का सामना करने वाले पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए एक स्पष्ट कानून अतिआवश्यक है - जिसके तहत अनुचित अभियोजन के इन पीड़ितों को प्रतिपूर्ति प्रदान करने के लिए राज्य पर वैधानिक दायित्व डालना, और इसके लिए प्रभावी न्यायिक तंत्र को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

ख. अनुशंसाएं

6.10 इस समय आयोग, तद्नुसार, अनुचित अभियोजनों के परिणामस्वरुप न्याय की हत्या के मामलों के निवारण के लिए विशिष्ट कानूनी प्रावधानों के अधिनियमन की सिफारिश करता है - इसमें दोनों वास्तविक और प्रक्रियात्मक पहलुओं को शामिल किया जाना चाहिए; यानी अनुचित तरीके से अभियोजनों के दावों पर निर्णय लेने के लिए एक वैधानिक और कानूनी ढांचा तंत्र की स्थापना करना और यदि आरोप सिद्ध होते हैं तो राज्य के द्वारा क्षतिपूर्ति के भुगतान किया जाना। परिणामस्वरुप, अनुचित अभियोजन से पीड़ितों को राज्य के द्वारा क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए एक वैधानिक दायित्व बनाना, और इस आधार पर उक्त पीडितों को क्षतिपूर्ति का सांविधिक अधिकार देना। और, ऐसे मामलों में जहां राज्य अपने अधिकारियों के ग़लत कृत्यों के लिए क्षतिपूर्ति का भुगतान करता है, वह संबंधित अधिकारियों से क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है, और कानून के अनुसार उनके खिलाफ उचित कार्यवाही शुरू कर सकता है।

6.11 अनुचित अभियोजन के कारण कई आधार पर हुए नुकसान की भरपाई के लिए एक विधायी ढांचे की आवश्यकता महत्वपूर्ण है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि निर्दोषों पर होने वाले अन्याय को अधिकारों के ढांचे में हल किया जाना चाहिए न कि राज्य द्वारा अनुग्रह के आधार पर। दूसरी बात यह है कि अनुचित अभियोजन के कारण पीड़ितों को होने वाली क्षति और नुकसान के लिए एक पारदर्शी, समान, प्रभावशाली, किफायती और समयबद्ध उपाय के अनुसार स्थापित विधायी प्रक्रिया की आवश्यकता है। पूर्वगामी को देखते हुए, मुख्य सिद्धांतों को रेखांकित करते हुए अनुशंसित कानूनी तंत्र निम्नानुसार होंगा:

(1) विशेष न्यायाल: इस उपाय तंत्र को बनाने में सबसे महत्वपूर्ण विचार यह है कि दावों को यथासंभव तेज़ी से और तत्काल निपटाने की आवश्यकता है। गति और समय दक्षता का तत्व

विशेष रूप से महत्व प्राप्त करता है क्योंकि दावा स्वयं अन्यायपूर्ण अभियोजन (अक्सर लंबे समय तक) से उत्पन्न होता है, जिस से अनुचित तरीके से आरोपी और उसके परिवार को पहले स्थान पर नहीं रखा जाना चाहिए था। इस तरह से डिजाइन की गई राहत की कोई भी प्रक्रिया तेज, लाभकारी, और वादी के हितों को ध्यान में रखते हुए बनाई जानी चाहिए; और इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू वह मंच है जिस पर इन दावों का निर्णय किया जाता है।तदनुसार, आयोग गलत अभियोजन के लिए क्षतिपूर्ति के दावों पर निर्णय देने के लिए प्रत्येक जिले में विशेष न्यायालयों के गठन की सिफारिश करता है। अपने पसन्द के न्यायधिकारक्षेत्र को चुनने की स्वतत्रंता आवेदक के पास निम्न रुप से होनी चाहिए : (क) या तो जिस जगह अनुचित अभियोजन चलाया गया है वहां विशेष न्यायालय का न्यायाधिकार क्षेत्र होना चाहिए; (ख) विशेष न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं में जहां आवेदक रहता है।

(2) वाद करण: इस कानूनी तंत्र में, क्षतिपूर्ति के लिए दावा दर्ज करने के लिए वाद करण "अनुचित अभियोजन" होगा, जो परस्पर अभियुक्त को निर्दोष मानते हुए या अभियुक्त के पक्ष में आदेश या निर्णय के साथ समाप्त होगा। यहां "अनुचित अभियोजन" की सीमा में शामिल किया जाएगा (क) विद्वेषपूर्ण अभियोजन (ख) सद्भाव के बिना अभियोजन प्रारम्भ करना। जैसा कि यहां शामिल है, विद्वेषपूर्ण अभियोजन का अर्थ दुर्भावना से एक दूसरे के विरुद्ध या बिना किसी उचित कारण या संभावित कारण के बिना असफल कार्यवाही से है। यहां शब्द "उचित और संभावित कारण" का अर्थ अभियुक्तों के अपराध में ईमानदारी से शामिल होने से है, पूर्ण परिस्थितियों के आधार पर, परिस्थितियों के अस्तित्व पर स्थापित सबूतों के आधार पर जो किसी सामान्य, समझदार और सावधान व्यक्ति को यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करता है कि अभियुक्त पर लगाए गए आरोप सहीं हैं;[144] सवाल यह है कि क्या यह मामला केस चलाने के लिए उपयुक्त है। इस वादकरण की नींव कानूनी रूप से कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को स्थापित करने में निहित है, और इसे किसी अनुचित कारण के लिए न्याय की मशीनरी की विकृति को हतोत्साहित करने के लिए तैयार किया गया है।[145] "सद्भाव " के बिना शुरु किये गये अभियोजन को भी अनुचित अभियोजन के दायरे में शामिल किया जाएगा और इसलिये इसके तहत भी क्षतिपूर्ति के लिए दावा किया जा सकता है। धारा 52, आईपीसी, "सद्भाव " शब्द की एक अपवर्जनात्मक परिभाषा देते हुए कहा है कि यदि कोई भी कार्य बिना "उचित सावधानी और देख रेख" के किया जाता है तो यह

---

[144]आर पी कपूर बनाम प्रताप सिंह कैरॉन, एआईआर 1966 सभी 66।

[145]मोहम्मद अमीन बनाम जोगेन्द्र कुमार, एआईआर 1947 पीसी 106।

कार्य सद्भाव से नहीं किया गया है[146]; जहां 'उचित सावधानी' किसी पद या कर्तव्य के निर्वहन के दौरान आवश्यक कौशल और सावधानी का उपयोग करते समयय तर्कसंगतता की श्रेणी को दर्शाती है, केवल सद्भाव होना ही पर्याप्त नहीं हैं बल्कि ऐसी सावधानी और कौशलों का होना भी कर्तव्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक है।[147]इसलिये 'सद्भाव' का न होने का अर्थ लापरवाही या असावधानी समझा जाना चाहिए;[148] यानि कि उचित सावधानी के बिना लापरवाही से चलाया गया मुकदमा या अभियोजन इस कानूनी तंत्र के तहत अनुचित अभियोजन की परिभाषा में शामिल किया जाएगा।

(3) आवेदन कौन कर सकता है: अनुचित अभियोग के परिणामस्वरुप यानी अनुचित अभियोग के कारण किसी भी आरोपी व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक, सम्मान, या सम्पति में हुए नुकसान या क्षति के लिए क्षतिपूर्ति प्रदान की जाएगी। क्षतिपूर्ति के दावे को व्यथित व्यक्ति जो कि आरोपी है के द्वारा या उसकी ओर से अधिकृत किसी भी अभिकर्ता के दायर किया जा सकता है। यदि आरोपी व्यक्ति का देहान्त अनुचित अभियोजन के अवसान के बाद हो गया है तो उसके सभी या किसी एक उत्तराधिकारी के द्वारा या मृतक के कानूनी प्रतिनिधि के द्वारा दायर किया जा सकता है।

(4) कार्यवाही की प्रकृति: समय और प्रक्रिया के संबंध में दक्षता के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, यह अनुशंसित किया जाता है कि विशेष न्यायालय जांच और निर्णय के उद्देश्य से जैसी भी प्रक्रिया निर्धारित की जाए का अविलंब अनुपालन करें। इन कार्यवाहियों में सबूत का मानक संभाव्य शुरुआत पर "संभावनाओं का संतुलन" होगा[149] यह दावार्कता (आरोपी) की

---

[146]"बिना उचित सावधानी और ध्यान के किये गये काम को 'सद्भाव' में न तो किया जाता है और नहीं माना जाता है।": धारा 52, आईपीसी।

[147]एस.के.सुंदरम, एआईआर 2001 एससी 2374; ब्लैक की लॉ डिक्शनरी "उचित सावधानी" शब्द की व्याख्या करते हुए बताती है कि "कार्रवाई की प्रकृति, या विषय वस्तु और समझौते के आस-पास की परिस्थितियों के संबंध में, उचित और उपयुक्त रूप से इस तरह की देखभाल, सावधानी या परिश्रम की श्रेणी अपेक्षित या आवश्यक हो सकती है। यह ऐसी सावधानी है जैसे एक साधारण बुद्धिमान व्यक्ति को उन परिस्थितियों में अभ्यास करेगा जब उसे कार्य करने के लिए बुलाया जाएगा"(ब्लैक लॉ डिक्शनरी (8 वां संस्करण 2004)।

[148]बक्स सो मीहा चौधरी, एआईआर 1938 रंग 350; यह भी देखें: हरभजन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, एआईआर 1966 एससी 97।

[149]देखें: महेश दत्तात्रे थिथकर बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 200 एससी 2238; राजस्थान राज्य बनाम नेत्रपाल, (2007) 4 एससीसी और सरजुदास बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 2000 एससी 403।

जिम्मेदारी होगी कि वह दुराचार को सिद्ध करे जिस के कारण अनुचित अभियोजन हुआ और / या अभियोजन के दौरान दुराचार को सिद्ध करे जिसकी वजह से अभियोजन अनुचित हुआ। विभिन्न संभावनाओं और असंभवताओं को परखने के बाद, और प्रबल संभावना पर पहुंचने के बाद, एक वास्तविक स्थिति से संबंधित संभावनाओं या असंभवताओं के साथ सामना करने वाले एक न्याय्य व्यक्ति का अनुमान[150] - यानि कि चाहे कोई भी उचित व्यक्ति एक ही निष्कर्ष निकाल सकता था।[151]साथ ही, इस तंत्र में आवेदन के निपटान, क्षतिपूर्ति के भुगतान, क्षतिपूर्ति के लिए दावा प्रस्तुत करने की समय सीमा और विशेष न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील करने की समय सीमा भी निर्धारित की जाएगी।क्षतिपूर्ति के दावे का आवेदन प्राप्त होने पर विशेष न्यायालय (केन्द्र/राज्य सरकारों सहित, मामले के अनुसार) विरोधी पार्टियों को नोटिस जारी करने के बाद और उन्हें अपना पक्ष रखने के पर्याप्त अवसर देकर, दावे की जांच कर, और यह निर्णय कर सकती है कि क्षतिपूर्ति का भुगतान केन्द्र / राज्य सरकार के द्वारा किया जाएगा। विशेष न्यायालय प्राधिकारियों को गलती करने वाले कार्मिक के विरुद्ध कानून के अनुसार कार्यवाही करने का निर्देश भी दे सकता है।

(5) अनुचित अभियोजन के पीड़ितों को वैधानिक प्रतिक्रिया का सार उनके लिए उपलब्ध राहत में निहित है, जिसके लिए इस कानून के मूल आशय और उद्देश्य को रेखांकित किया गया है, यानी समाज में फिर से समायोजित करने में या फिर से अपने जीवन में पुनरुत्थान में अनुचित रुप से आरोपी / दोषी की सहायता करना। तदनुसार, इस वैधानिक तंत्र में राज्य की क्षतिपूर्ति के लिए भुगतान करने के दायित्व को स्थापित करने के अलावा अनुचित अभियोजन के सिद्ध मामलों के आधार पर अन्य समान मामलों में राहत यानी क्षतिपूर्ति के लिए भुगतान दिया जा सकेगा। इस बिंदु पर, यह कानून के लिए व्यवहार्य प्रतीत नहीं होता है कि भुगतान किए जाने वाले मौद्रिक क्षतिपूर्ति की एक निश्चित राशि निर्धारित की जाए, मौद्रिक क्षतिपूर्ति की राशि सहित क्षतिपूर्ति का निर्धारण करते समय कानून मार्गदर्शक सिद्धांत / कारकों को शामिल करेगा जिस पर विशेष न्यायालय को विचार करने की आवश्यकता होगी। तत्काल सहायता के लिए आवेदन किए जाने पर, कुछ निश्चित श्रेणी के मामलों में अंतरिम क्षतिपूर्ति के लिए एक प्रावधान किया जाना आवश्यक है; दावे के विचाराधीन होने पर भुगतान किया जाएगा।इस तंत्र के तहत क्षतिपूर्ति में दोनों प्रकार की क्षतिपूर्तियां शामिल की जाएंगी आर्थिक और गैर-आर्थिक सहायता ताकि अनुचित अभियोजन के इन पीड़ितों का समाज में पुनर्वास करवाया जा सके। जहां तक आर्थिक सहायता मौद्रिक रुप में उपलब्ध

[150]गुलाबचंद बनाम कुडिलाल, एआईआर 1966 एससी 1734. यह भी देखें: डॉ. एन.जी दस्ताने बनाम श्रीमती एस. दस्ताने, एआईआर 1975 एससी 1534।

[151]देखें: उत्तर प्रदेश पथ परिवहन निगम बनाम यूपी राज्य, 2000 सभी एलजे 1461।

करवाने का प्रश्न है उसका निर्धारण विशेष न्यायालय द्वारा किया जा सकता है; गैर आर्थिक सहायता सेवाओं के रुप में उपलब्ध करवाई जाएगी जैसे परामर्श, मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं, व्यवसायिक / रोजगार कौशल विकास और ऐसी समान सेवाएं।गैर आर्थिक सहायता में अभियोजन या कारावास से जुड़ी अयोग्यताओं को हटाने के लिए एक विशिष्ट प्रावधान भी शामिल किया जाएगा - विशेष रूप से अनुचित तरीके से आरोपी व्यक्ति को सरकारी और निजि क्षेत्र में रोजगार खोजने की संभावनाओं,शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश को प्रभावित करता है इत्यादि। उक्त बहुत ही महत्वपूर्ण है क्यों कि अभियोजन और कारावास से सामाजिक अपमान और अन्य ऐसे कई नुकसान जुडे हुए हैं (यद्यपि यह पहली दृष्टि में अनुचित था)। एक आपराधिक मामले में, एक ट्रायल कोर्ट या अपीलीय अदालत द्वारा निर्दोष साबित होने पर यह पता लगाया गया कि आरोपी को किसी मामले में गलत तरीके से फंसाया गया था, उसे इस कलंक से दूर करना होगा क्योंकि आरोप तो अपने आप ही समाप्त जाते हैं, यानी ससम्मान बरी होने के मामलों में।[152] दोषमुक्ति का एक आदेश पूर्वव्यापी संचालन करता है, और जब अपीलीय अदालत द्वारा दिया जाता है तो यह निचली अदालत द्वारा दी गई सजा को भी समाप्त कर देता है।[153] पूर्वगामी को व्यावहारिक प्रभाव देने के लिए, उपर्युक्त अयोग्यता को हटाने के लिए एक विशिष्ट प्रावधान शामिल करना आवश्यक है। इस तरह का प्रावधान, सांविधिक शक्ति द्वारा समर्थित, आरोपी व्यक्ति को समाज में पुन: समायोजित करने में मील का पत्थर साबित होगा।क्षतिपूर्ति का निर्धारण करते समय जिन कारकों पर विचार करने की आवश्यकता है उन्हें व्यापक रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है "वित्तीय" और "अन्य कारक" साथ ही साथ अपराध की गंभीरता, सजा की कठोरता, सजा की अवधि, स्वास्थ्य को नुकसान या क्षति, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक क्षति, पीडित की सामाजिक स्थिति, इज्जत का नुकसान, रोजगार और शिक्षा से संबंधित अवसरों का नुकसान, आय का नुकसान, सम्पति का नुकसान या क्षति भी शामिल हैं।

---

[152]"जब अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों पर पूर्ण विचार के बाद अभियुक्त को बरी कर दिया जाता है और अभियोजन पक्ष आरोपी पर लगाए गए आरोपों को साबित करने में बुरी तरह विफल रहता है, तो संभवतः यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त को सम्मानित रूप से बरी कर दिया गया था।" रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया का प्रबंधन बनाम भोपाल सिंह पांचाल, (1994) 1 एससीसी 541. यह भी देखें: बलजींदर पाल कौर बनाम पंजाब राज्य, (2016) 1 एससीसी 671; पुलिस महानिरीक्षक और अन्य बनाम एस.समथिरम, (2013) 1 एससीसी 598; और पुलिस आयुक्त नई दिल्ली बनाम मेहर सिंह, (2013) 7 एससीसी 685।

[153]बी.आर. कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, एआईआर 2001 एससी 3435; और विद्या चरण शुक्ला बनाम पुरुषोत्तम लाल कौशिक, एआईआर 1981 एससी 547।

6.12 रिपोर्ट में चर्चा किए गए सिद्धांतों को आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 2018 में व्यक्त किया गया है, "अनुलग्नक" के रूप में इसके साथ संलग्न है।

आयोग तदनुसार सिफारिश करता है।

(ह.)
(डा. न्यायमूर्ति बी.एस.चौहान)
अध्यक्ष

(ह.)	(ह.)	(ह.)
(न्यायमूर्ति रवि आर.त्रिपाठी)	(प्रो.(डॉ.) एस.शिवाकुमार)	(डॉ.संजय सिंह)
सदस्य	सदस्य	सदस्य सचिव

(सुरेश चन्द्र)	(डॉ.जी नारायण राजू)
सदस्य (पदेन)	सदस्य (पदेन)

आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संसोधन) विधेयक, 2018

एक विधेयक

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 आगे संसोधन करने के लिए।
भारत गणराज्य के साठवें वर्ष में संसद द्वारा इसे निम्न रुप में लागू किया गया है:

1. **संक्षिप्त नाम एवं प्रारम्भ -** (1) इस अधिनिमय को आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संसोधन) विधेयक, 2018 कहा जा सकता है।

(2) यह केन्द्र सरकार के द्वारा राजपत्र, नियुक्ति में प्रकाशित होने की तिथि से प्रवृत्त होंगे।

2. **धारा 2 का संसोधान -** धारा 2 में आपराधिक प्रक्रिया संहिता,1973 (1974 का 2) (इसके बाद में आपराधिक प्रक्रिया संहिता के रूप में संदर्भित), धारा -2 में -

(ii) खण्ड (ञ) के बाद, निम्न खण्ड सम्मिलित किया जाता है, अर्थात :-

(ञक) "विद्वेषपूर्ण अभियोजन" का अर्थ बिना किसी भी विद्यमान उचित या संभावित कारण के अभियोजन शिकायत शुरू करना है;"

(iii) खण्ड (भ) के बाद, निम्न खण्ड सम्मिलित किया जाता है, अर्थात:-

(भक) "अनुचित अभियोग" का अर्थ विद्वेषपूर्ण अभियोजन या सद्भावना के बिना शुरु किया गया अभियोजन से है जिसका अन्त आरोपी के पक्ष में होता है, और निम्न में से किसी का भी समावेश करता है अर्थात: -

(i) जमा करने के लिए झूठा या गलत रिकॉर्ड या दस्तावेज बनाना या गढना;

(ii) शपथ के द्वारा या कानून के प्रावधान द्वारा सत्य कहने के लिए कानूनी रूप से बाध्य होने पर साक्ष्य के रूप में प्राप्त करने के लिए कानून द्वारा अधिकृत अधिकारी के समक्ष झूठी घोषणा करना या बयान देना;

(iii) कानूनी तौर पर शपथ या कानून के प्रावधान से सत्य कहने के लिए बाध्य होने पर भी अन्यथा झूठे साक्ष्य देना।

(iv) प्रस्तुत करने के लिए झूठेसबूत तैयार करना;

(v) किसी सबूत को प्रस्तुत करने से रोकने के लिए खत्म करना या छुपाना;

(vi) किसी व्यक्ति के विरुद्ध झूठे आरोप लगाना या कार्यवाही शुरु करवाना या कार्यवाही शुरु करवाने के लिए कारण देना;

(vii) कानून के विरुद्ध किसी व्यक्ति को कैद या परीक्षण में रखना;

(viii) किसी भी कानून का जिन्हें विशेष रुप से बिन्दु संख्या (i) से (vii) में शामिल नहीं किया गया है का किसी भी रुप में उल्लंघन करना;

3. **नये अध्याय 27क की प्रविष्टि -** आपराधिक प्रकिया संहित में अध्याय 27 के पश्चात निम्न अध्याय को प्रविष्ट किया जाता है, अर्थात: -

अध्याय 27क
अनुचित तरीके से अभियोजित व्यक्ति को क्षतिपूर्तिप्रदान करना

धारा 365क क्षतिपूर्ति के लिए आवेदन

(1) अनुचित तरीके से अभियोजन के लिए क्षतिपूर्ति मांगने के लिए आवेदन किया जा सकता है -

क. जिसे क्षति पहुंची हो उस आरोपी व्यक्ति के द्वारा;

या

ख. जिसे क्षति पहुंची हो उस आरोपी व्यक्ति के अधिकृत व्यक्ति के द्वारा;

या

ग. यदि आरोपी व्यक्ति का देहान्त अनुचित अभियोजन के अवसान के पहले या बाद में हो गया है तो उसके सभी या किसी एक उत्तराधिकारी के द्वारा या मृतक के कानूनी प्रतिनिधि के द्वारा:

बशर्ते कि मृतक के सभी उत्तराधिकारी या कानूनी प्रतिनिधियों ने कोई अन्य आवेदन प्रस्तुत नहीं किया हो, क्षतिपूर्ति के लिए इस तरह के आवेदन को मृतक के सभी उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों की ओर से और लाभ के लिए आवेदन माना जाएगा

व्याख्या -1 इस खंड और धारा 365 ख में, "क्षति" का अर्थ किसी भी आरोपी को अनुचित अभियोजन के परिणामस्वरुप शारीरिक, मानसिक, प्रतिष्ठा या संपत्तिके होने वाली किसी भी प्रकार की वास्तविक या संभावित हानि से है।

व्याख्या -2 इस खंड में और धारा 365ख, 365ग, 365घ, 365ड., 365च और 365झ, "क्षतिपूर्ति" में आर्थिक या गैर-आर्थिक क्षतिपूर्तियां, या दोनों शामिल हैं; जबकि गैर-आर्थिक क्षतिपूर्ति में परामर्श सेवाएं, मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं, व्यावसायिक या रोजगार कौशल विकास, और ऐसी अन्य सेवाएं या सहायता शामिल हैं जिन्हें अभियुक्त को समाज में पुर्नसमायोजन की सुविधा प्रदान करने की आवश्यकता हो सकती है।

(2) उपधारा (1) के तहत प्रत्येक आवेदन में आवेदक के लिए एक विकल्प होगा कि वह विशेष न्यायालय जिसके क्षेत्राधिकार में अनुचित अभियोजन घटित हुआ था में या विशेष न्यायालय के स्थानीय सीमा में जिसके क्षेत्राधिकार में आवेदक रहता है, वहां आवेदन प्रस्तुत कर सकता है, ऐसे फॉर्म में ऐसे विवरण शामिल किये जा सकते हैं जिन्हें निर्धारित किया जा सकता हो।

(3) यदि किसी मामले में 6 माह से अधिक का कारावास हुआ है तो विशेष न्यायालय आवेदक और अन्य पार्टियों को अपनी सफाई प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने के पश्चात यदि दावा किया गया है तो आवेदक का अन्तिरिम राहत प्रद्रान कर सकता है ताकि उसे तुरंत पुर्नवास में सहायता प्रदान की जा सके। किसी भी मामले में ऐसी क्षतिपूर्ति की राशि रुपये 50,000/- से अधिक और 25,000/- से कम नहीं होगी।

(4) उपधारा (1) के तहत ऐसी क्षतिपूर्ति के लिए प्रत्येक आवेदन को अन्तिम रुप से निर्दोष साबित होने के बाद अधिमानत: 2 वर्षों की समय सीमा में प्रस्तुत करना होगा:-

यदि आवेदक न्यायालय को सन्तुष्ट करने में सफल हो जाता है कि आवेदक को समय पर आवेदन करने से पर्याप्त कारणों के आधार पर रोका गया था तो विशेष न्यायालय उक्त दो वर्षों की समय सीमा के अवसान के बाद भी आवेदनों पर विचार कर सकते हैं परन्तु तीन वर्ष से अधिक बीत जाने के बाद इन पर कोई विचार नहीं किया जाएगा।

<u>धारा 365ख कुछ निश्चित मामलों में क्षतिपूर्ति के दावों के विकल्प के संबंध में। -</u>

किसी भी अन्य कानून में कुछ भी निहित होने के बावजूद, जहां क्षति के कारण क्षतिपूर्ति का दावा इस अध्याय के या अन्य किसी उपायके तहत किया जाता है तो दावेदार क्षतिपूर्ति पाने का हकदार अन्य माध्यमों को छोडते हुए केवल एक ही उपाय के माध्यम से हो सकता है।

<u>धारा 365ग विशेष न्यायालय का निर्णय</u>

(1) धारा 365क के तहत क्षतिपूर्ति के लिए आवेदन प्राप्त होने पर, विशेष न्यायालय मामलानुसार केन्द्र सरकार या संबंधित राज्य सरकार को आवेदन के संबंध में नोटिस देकर और सभी पार्टीयों को अपना पक्ष रखने के अवसर प्रदान करने के बाद दावे के संबंध में या मामले के अनुसार प्रत्येक दावों की जांच करवा सकता है। तत्पश्चात न्यायसंगत एवं उचित क्षतिपूर्ति निर्धारित करने का फैसला कर सकता है। अपने निर्णय में न्यायालय यह भी

निर्दिष्ट कर सकता है कि किस व्यक्ति या व्यक्तियों को कितना भुगतान मामलानुसार केन्द्र सरकार या संबंधित राज्य सरकार के द्वारा किया जाएगा और केन्द्र सरकार या संबंधित राज्य सरकार को गलती करने वाले अधिकारी के विरुद्ध कानून के अनुसार कार्यवाही प्रारम्भ करने का निदेश भी दे सकता है।

(2) मामले के निर्णय होने के पन्द्रह दिनों के भीतर विशेष न्यायालय संबंधित पार्टियों को निर्णय की प्रति नि:शुल्क पहुंचाने का प्रबंध करेगा।

(3) धारा 365क के तहत दायर किये गये आवेदनों को आवेदन प्राप्ती के तिथि से एक वर्ष के भीतर निपटाया जाएगा।

बशर्ते कि यदि आवेदन को निर्धारित समय सीमा में नहीं निपटाया जाता है तो न्यायालय आवेदन को निर्धारित समय सीमा में नहीं निपटाय जाने का कारण लिखित में रिकॉर्ड करेगा।

(4) अन्तरिम क्षतिपूर्ति के आवेदनों को प्रतिवादी(यों) को नोटिस दिये जाने की तिथि से नब्बे दिनों की समय सीमा में निपटाया जाएगा।

(5) इस धारा के तहत निर्णय किये जाने पर, इस निर्णय के अनुसार जो भी व्यक्ति रकम के भुगतान करने के लिए जिम्मेदार है वह निर्णय होने के तीस दिनों में नियमों में निर्धारित तरीके से पूरी रकम जमा करवाएगा।

<u>धारा 365घ किसी भी अनुमत दावे पर ब्याज का भुगतान।-</u>

इस संहिता के तहत यदि विशेष न्यायालय किसी दावे पर क्षतिपूर्ति के भुगतान का निर्णय करती हैं तो यह भी निदेश दिया जा सकता है कि क्षतिपूर्ति की रकम के साथ साथ छ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से दावा प्रस्तुत किये जाने की तिथि से ब्याज का भी भुगतान करना होगा। इस का उल्लेख निर्णय में भी किया जा सकता है।

<u>धारा 365ड. विशेष न्यायालय द्वारा ध्यान में रखे जाने वाले कारक-</u>

क्षतिपूर्ति या ब्याज की राशि का निर्धारण करते समयधारा 365ग या 365घ के तहत, जैसा भी मामला हो, विशेषन्यायालय निम्नलिखित वित्तीय और अन्य कारकों को ध्यान में रखेगा, अर्थात्:

(i) अपराध की गंभीरता; सजा की गंभीरता;कैद की अवधि;

(ii) स्वास्थ्य का नुकसान या क्षति;
(iii) आय या उपार्जन का नुकसान;
(iv) संपत्ति का नुकसान या क्षति;
(v) अनुचित अभियोजन के कारण कानूनी शुल्क और अन्य परिणामी खर्च;
(vi) पारिवारिक जीवन की हानि;
(vii) अवसरों की कमी (शिक्षा, आजीविका, भावी अर्जन क्षमताओं, कौशल इत्यादि में कमी);
(viii) बदनामी जो कि प्रतिष्ठा के लिए कंलक है या इसी तरह की क्षति;
(ix) आरोपी और उसके परिवार को मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक क्षति;
(x) ऐसे अन्य कारक जिन्हें विशेष न्यायालय दावे के संबंध में न्याय के लिए आवश्यकमानता हो।

<u>धारा 365च सजा से संबंधित अयोग्यता को हटाना।-</u>

किसी भी अन्य कानून में कुछ भी निहित होने के बावजूद, किसी व्यक्ति को धारा 365ग के तहत अनुचित अभियोग के लिए क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती है तो वह ऐसे अभियोजन या सजा के लिए किसी भी प्रकार से अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा।

<u>धारा 365च विशेष न्यायालय की प्रक्रियाएं और शक्तियां।-</u>

(1) धारा 365ग के तहत जांच करवाने के लिए, नियमों के अधीन जो इसके वास्ते बनाए जा सकते हैं, विशेष न्यायालय जैसी भी उपयुक्त ऐसी संक्षिप्त प्रक्रियाओं का पालन कर सकते हैं।

(2) इस अध्याय के तहत दावों पर निर्णय करते समय निम्न मामलों के संबंध में विशेष न्यायालय के पास भी वही शक्तियां होगीं जो कि नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 के 5) के तहत एक दीवानी न्यायालय के पास होती हैं, अर्थात: -
(i) किसी पार्टी या गवाह को उपस्थिति के लिए सम्मन करना या बाध्य करना और गवाह की शपथ पर जांच करना;
(ii) सबूत के रूप मेंकिसी दस्तावेज़ या अन्य किसी वस्तु की खोज करना और प्रस्तुत करना;
(iii) शपथ पत्र पर साक्ष्यों को प्राप्त करना;
(iv) उचित प्रयोगशालाओं या किसी अन्य प्रासंगिक स्रोत से संबंधित विश्लेषण या परीक्षण की रिपोर्ट की मांग करना;
(v) किसी भी गवाह की जांच करने के लिए किसी आयोग का गठन करना;
(vi) कोई अन्य मामला जिसे निर्धारित किया जा सके।

(3) इस अध्याय के प्रावधानों के तहत, इस अध्याय के तहत किसी दावे पर निर्णय के उद्देश्य से,एक विशेष न्यायालय के पास शपथ पर साक्ष्य लेने और गवाह की उपस्थिति सुनिश्चित करवाने और दस्तावेजों, सामग्रियों और वस्तुओं की खोज और प्रस्तुत करने के लिए मजबूर करना और जैसा भी निर्धारित किया जाए इस उद्देश्य के लिए अन्य प्रकार की शक्तियां होंगी। और इस तरह के एक दावों पर इस तरह निर्णय देगा जैसे कि यह एकसिविल कोर्ट है।

धारा 365ज अपील। -

(1) उपधारा (2) के प्रावधानों के अधीन, विशेष अदालत के निर्णय से असन्तुष्ट व्यक्ति निर्णय की तिथि से नब्बे दिनों की अवधि में उच्च न्यायालय में अपील दाखिल कर सकता है।

(2) उच्च न्यायालय के द्वारा उस व्यक्ति की किसी भी अपील पर विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि वह व्यक्ति जिसे विशेष न्यायालय के द्वारा दिये गये निर्णय के अनुसार क्षतिपूर्ति की रकम का भुगतान किया जाना है और वह कम से कम पच्चीस हजार रुपये या कुल क्षतिपूर्ति की राशि का पचास प्रतिशत, दोनों में से जो भी अधिक हो जैसा भी तरीका निर्धारित किया गया हो के माध्यम से जमा न करवा दे।

(3) उच्च न्यायालय किसी अपील पर नब्बे दिनों के बाद भी सुनवाई कर सकता है यदि आवेदक न्यायालय को सन्तुष्ट कर दे कि अपील दायर करने से रोकने के पर्याप्त कारण थे।

(4) विशेष न्यायालय के किसी भी ऐसे निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती है जिसमें क्षतिपूर्ति की राशि पचास हजार रुपये से कम है।

<u>धारा 365झ राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्तियां ।-</u>

(1) राज्य सरकार अधिसूचना के द्वारा इस अध्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नियम बना सकते हैं।

(2) बिना किसी पूर्वाग्रह के पूर्वगामी शक्तियों की सामान्यता के लिएऐसे नियम सभी या किसी एक निम्नलिखित मामले के लिए प्रदान कर सकते हैं, अर्थात्:-

(क) क्षतिपूर्ति के दावों के लिए आवेदन पत्र और इस से संबंधित जानकारी,धारा 365क के उप खण्ड (2) के तहत ऐसे आवेदनों के संबंध में किये जाने वाला भुगतान;

(ख) उप खण्ड (1) के तहत विशेष न्यायालय के द्वारा जांच करवाने के लिए अपनाई जाने वाली प्रकिया और धारा 365छ की उपधारा (2)(iv)के तहत दीवानी न्यायालय की शक्तियों का विशेष न्यायालय द्वारा उपयोग किया जा सकता है;

(ग) धारा 365जकी उपधारा (2) के तहत एक विशेष अदालत के निर्णय के विरुद्ध अपील को प्राथमिकता देने के लिए राशि के भुगतान का प्रकार और तरीका;

(घ) कोई अन्य मामला जो कि आवश्यक समझा जाए'।

(2) इस खंड के तहत राज्य सरकार द्वारा बनाए गए प्रत्येक नियम कोजितनी जल्दी हो सके राज्य विधायिका के समक्ष रखा जाएगा।

****

केसों की सूची

1. अबरार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2011 एससी 354
2. अदंबाई सुलेमेनभाई अजमेरी और अन्यबनाम गुजरात राज्य, (2014) 7एससीसी 716
3. अफजलुर रहमान और अन्यबनाम सम्राट, एआईआर 1943 एफसी 18।
4. अहमद कुट्टी (1963) 1 सीआर एलजे 597 (केरल)
5. अब्बा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2000) 3 एससीसी 521
6. अलाराखा के. मंसुरी बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 2002 एससी 1051
7. अमर पाल सिंह बनाम यूपी राज्य, एआईआर 2012 एससी 1995।
8. अमरसिंह जेठा, (1885) 10 बोम्बे506
9. अमरिक सिंह बनाम पेप्सू राज्य, एआईआर 1955 एससी 309
10. अनवर बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, (1977) 3 एससीसी 367।
11. अशफाक अहमद, 1981 सभी एलजे 871
12. असीक महोदद बनाम सम्राट, एआईआर 1936 लाहौर330
13. अशोक शर्मा बनाम भारतीय संघ, 2009 एसीजे 1063
14. अयोध्या दुबे और अन्य बनाम राम सुमार सिंह, एआईआर 1981 एससी 1415।
15. बी.सी. ओरेन बनाम बिहार राज्य, एम.पी. जैन, भारतीय संवैधानिक कानून खंड 1 (लेक्सिसएक्सिस, गुड़गांव, भारत) में उद्धृत6वां संस्करण अपडेट किया गया, 2013) 1618।
16. बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, एआईआर 1996 एससी 484
17. बी.आर. कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, एआईआर 2001 एससी 3435
18. बब्बू चौहान उर्फदब्बू बनामएनसीटी दिल्ली सरकार, 247(2018) डीएलटी 31।
19. बद्री प्रसाद शर्मा बनाम शांति प्रसाद शर्मा, 1982 ए सीआर आर 9
20. बैजनाथ बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1996 एससी 220
21. बलबीर सिंह बनाम डी.कादियन, एआईआर 1986 एससी 345
22. बलजींदर पाल कौर बनाम पंजाब राज्य, (2016) 1 एससीसी 671
23. बैंगलोर सिटी कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्यएवं अन्य, एआईआर 2012 एससी 1395।
24. बेहारी सिंह, (1867) 7 डब्ल्यूआर (सीआर) 3।
25. भरतभाई चंदूभाई गधिया बनाम गुजरात राज्य, उच्च न्यायालयगुजरात, आर / एससीआर. ए / 951/2014 में दिनांक 19मार्च 2014काआदेश

26. भीम सिंह, विधायक बनाम जम्मू-कश्मीरराज्य और अन्य । (1985) 4 एससीसी 677।
27. भीमन्ना बनाम कर्नाटक राज्य, एआईआर 2012 एससी 3026
28. बिभाबाती देवी बनाम रामेंद्र नारायण राय, एआईआर 1947 पीसी 19।
29. बोल्डर, (1914) 1 केबी 122।
30. ब्राबोशी पांडा (1908) 13 सीडब्ल्यूएन 398।
31. ब्रुक्स बनाम मेट्रोपोलिस के पुलिस आयुक्त और अन्य।, [2005] यूकेएचएल24
32. बक्स सो मीह चौधरी, एआईआर 1938 रंग 350
33. सीबीआई बनाम ओम प्रकाश अग्रवाल एवं अन्य, सीसी नं.39/2016 (विशिष्ट केस आईडी संख्या: DLST010000112003) सविता राव, विशेष न्यायालय मेंन्यायाधीश, (पीसी अधिनियम) सीबीआई 01, (दक्षिण) साकेत न्यायालय: नई दिल्ली
34. अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड और अन्य बनाम चंद्रमा दास, एआईआर 2000 एससी988
35. चिड्डा (1871) 3 एनडब्ल्यूपी 327।
36. पुलिस आयुक्त नई दिल्ली बनाम मेहर सिंह, (2013) 7 एससीसी 685।
37. कॉमन कॉज, एक पंजीकृत सोसाइटी बनाम भारत संघ, एआईआर 1999 एससी2979
38. उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केंद्र और अन्य बनाम भारत संघ,एआईर 1995 एससी 922
39. डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1997 एससी 610
40. दलबीर सिंह बनाम यूपी राज्य, एआईआर 200 एससी 1674।
41. दरबारा सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2013 एससी 840।
42. दर्शन सिंह, 1985 सीआरएलजे एनओसी 71 (पी एंड एच)।
43. दशरथी मंडल बनाम हरि दास, एआईआर 1959 कैल 293।
44. दत्ताजीराव भौसाहेब पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1971) 3एससीसी 410
45. दयाल सिंह और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, एआईआर 2012 एससी 3046
46. पुलिस महानिरीक्षक और अन्य बनाम एस समथिरम, (2013) 1एससीसी 598
47. देवकी नंदन बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1983 एससी 1134
48. धमन जॉय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1995 एससी 1795
49. धनंजय राम शर्मा बनाम एम.एस उपाध्याय और अन्य, एआईआर 1960 एससी 745
50. डॉ एन.जी. दस्ताने बनाम श्रीमती एस. दस्ताने, एआईआर 1975 एससी 1534।
51. डॉ. रानी जोहर और अन्य बनाम एम.पी राज्य एवं अन्य, आपराधिक रिट याचिका संख्या 2015 की 30, 3 जून 2016 को तय की गई।
52. दुर्गा उर्फराजा बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2008 की आपराधिक अपील संख्या 812।
53. गीता बनाम लेफ्टिनेंट गवर्नर, 75 (1998) डीएलटी 822

54. गोपाल रामदास शेयेट बनाम महाराष्ट्र राज्य, आपराधिक रिट याचिकासंख्या 2015 की 3960, 5 मई 2017 को तय की गई।
55. गुलाबचंद बनाम कुडिलाल, एआईआर 1966 एससी 1734
56. एच.एच.बी.बी. गिल बनाम किंग, एआईआर 1948 पीसी 128
57. हरभजन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, एआईआर 1966 एससी 97।
58. हरि दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1964 एससी 1173
59. हिल बनाम वेस्ट यॉर्कशायर के मुख्य कॉन्स्टेबल, [1987] यूकेएचएल 12।
60. हिल बनाम हैमिल्टन-वेंटवर्थ क्षेत्रीय पुलिस सेवा बोर्ड, [2007]एससीसी 41।
61. हुसैनारा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना,एआईआर 1979 एससी 1369
62. के, एक न्यायिक अधिकारी मामले में: (2001) 3 एससीसी 54
63. इंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1995) 3 एससीसी 702
64. इरविंग बनाम ऑस्ट्रेलिया, पैरा। 8.4; संख्या 868/1999
65. जगदेव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और संगठन, 2017 (2) बीओएमसीआर (सीआरआई) 832।
66. जमुना (1881) 6 कैल 620।
67. जनता दल बनाम एच एस चौधरी और अन्य। एआईआर 1993 एससी 892
68. जयसिंह वधू सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2001 सीआरएलजे 456(बोम)।
69. जितेंद्र (जेल में) बनाम यूपी राज्य, 2000 सीआर एलजे 3087 (सभी)।
70. जोगिंदर कौर बनाम पंजाब राज्य, (1969) 71 पीएलआर 85।
71. के. चिन्नास्वामी रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1962 एससी1788।
72. कमला देवी बनाम एनसीटी दिल्लीसरकार, 114 (2004) डीएलटी 57
73. कपूर आर पी बनाम प्रताप सिंह कैरॉन, एआईआर 1966 सभी 66।
74. करण सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, एआईआर 2013 एससी 2348।
75. कस्तुरी लाल रियाल राम जैन बनाम यूपी राज्य, एआईआर 1966 एससी 1039
76. खत्री और अन्यबनाम बिहार राज्यऔर अन्य, एआईआर 1981 एससी 928
77. कोडली पुरंचंद्र राव बनाम लोक अभियोजक, एपी, एआईआर 1975 एससी1925
78. कृष्णा गोविंद पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1973 एससी 138
79. महेश दत्तात्रे थिथकर बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2009एससी 2238
80. मलकियात सिंह बनाम यूपी राज्य, (1998) 9 एससीसी 351
81. मल्लप्पा बनाम वीरबासप्पा और अन्य, 1977 क्रिलज 1856 (कांट।)
82. भारतीय रिजर्व बैंक का प्रबंधन बनाम भोपाल सिंह पंचाल,(1994) 1 एससीसी 541

83. मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ, एआईआर 1978 एससी 597
84. मानसरम जियानचंद और अन्य बनाम सम्राट, एआईआर 1941 सिंध 36
85. मैरीलैंड बनाम किंग, 133 एस सीटी। 1958 (2013)
86. मताजोग दुबे बनाम एचसी भारी, एआईआर 1956 एससी 44
87. मौलद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1963) पूरक2 एससीआर 38
88. मिर्जा हसन मिर्जा बनाम मुसममत महबूबन (1913) 18 सीडब्ल्यूएन391
89. मोहम्मद अमीन बनाम जोगेन्द्र कुमार, एआईआर 1947 पीसी 106।
90. मोहम्मद आमिर खान बनाम राज्य, 138 (2007) डीएलटी 759
91. मोहम्मद जलीस अंसारी एवं अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एआईआर 2016 एससी 2461।
92. श्रीमती सुधा रशीद बनाम भारतीय संघ, 1995 (1) एससीएएल 77
93. मुंशी सिंह गौतम बनाम एमपी (2005) 9 एससीसी 631।
94. मुराद (1893) पीआर संख्या 2949
95. नबोडेप चिंदर सिरकर, (1869) 11 डब्ल्यूआर (सीआर) 2।
96. नागेश्वर श्री कृष्णा घोबे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1973 एससी165
97. नागराज बनाम मैसूर राज्य, एआईआर 1964 एससी 269
98. नंदू उर्फ नंदकिशोर बनाम मध्य प्रदेश राज्य, आपराधिक अपीलसंख्या 2008 की 866।
99. नानकु महटन बनाम सम्राट, एआईआर 1936 पैट 358।
100. नारपरेड्डी सेशाद्री (फिर से), (1938) 39 करोड़ एलजे 875
101. नारायण बाबाजी (1872) 9 बीएचसी 346
102. नासीरुद्दीन बनाम राज्य, 2001 क्रिलज 4925
103. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बनाम अरुणाचल राज्यप्रदेश, एआईआर 1996 एससी 1234।
104. नीमा गोयल बनाम भारतीय संघ, 2011 (125) डीआरजे 273
105. उड़ीसा राज्य निलाबाती बेहरा बनाम एआईआर 1993 एससी 1960
106. पीपी यूनिकृष्णन बनाम पुतियोट्टिल अलीकुट्टी, एआईआर 2000 एससी 2952
107. पासुपुलेटी रामदास बनाम सम्राट, 1911 एमडब्ल्यूएन 64।
108. पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघएवं अन्य,एआईआर 1997 एससी 1203
109. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स के सचिव के माध्यमसे और अन्य बनाम दिल्ली पुलिस मुख्यालय और अन्य, (1989) 4 एससीसी 730104
110. फूलवती बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, 84 (2000) डीएलटी 177

111. प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2007 एससी 1274
112. प्रेमपाल एवं अन्य बनाम पुलिस आयुक्त और अन्य, (2010) आईएलआर 4दिल्ली 416
113. आर (एडम्स के आवेदन पर) बनाम न्याय के लिए राज्य सचिव,[2011] यूकेएससी 18।
114. आर पी कपूर बनाम प्रताप सिंह कैरॉन, एआईआर 1966 सभी 66।
115. रघुवंश दीवानंचंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य,एयर 2011 एससी 3393
116. राजीब रंजन और अन्य बनाम आर विजयकुमार, (2015) 1 एससीसी 513
117. राम लखन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सरकार, (2015) 16एससीसी 715
118. राम नारायण, 1980 क्रि एलजेएन (एनओसी) 55 सभी।
119. रामानुज पांडे बनाम एम.पी. राज्य एवं अन्य, (2009) 7 एससीसी 248
120. रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2012 एससी 979
121. रंजीत सिंह बनाम पेप्सु राज्य, एआईआर 1959 एससी 843
122. रत्तीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2012 एससी 1485
123. रेदेय नाथ विश्वास, (1865) 2 डब्ल्यूआर (सीआर) 44।
124. रॉबिन्सन बनाम वेस्ट यॉर्कशायर पुलिस के चीफ कॉन्स्टेबल, [2018]यूके एससी 4।
125. रूप लाल अब्रोल बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1972 जे एंड के 22
126. रुदलशाह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1983 एससी 1086
127. रुकिया बेगम बनाम कर्नाटक राज्य, एआईआर 2011 एससी 1585
128. एस.बी साहा बनाम एमएस कोचर, एआईआर 1979 एससी 1841
129. एस.के सुंदरम, एआईआर 2001 एससी 2374
130. एसएस खंडवाला (आईपीएस) अतिरिक्त पुलिस महानिदेशकऔर अन्य बनाम गुजरात राज्य,(2003) 1 जीएलआर 802
131. सहेली, एक महिला संसाधन केंद्र और अन्य बनाम आयुक्त, दिल्ली पुलिस और अन्य, एआईआर 1990 एससी 513।
132. संतोष सिंह बनाम इज़हार हुसैन, एआईआर 1973 एससी 2190
133. सरजुदास बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 2000 एससी 403
134. सेबेस्टियन एम. होंगरे बनाम भारत संघ, एआईआर 1984 एससी 1026।
135. शंभू नाथ मिश्रा बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, (1997) 5 एससीसी 326।
136. शमनसाहेब एम. मल्टीटानी बनाम कर्नाटक राज्य, एआईआर 2001 एससी 921
137. सीता राम चंदू लाल बनाम मलिकर सिंह, एआईआर 1956 पेप 30

138. श्रीमती प्रिया दुबे बनाम झारखंड राज्य, उच्च न्यायालयझारखंड सीआर में दिनांकित 13 नवंबर 2013 का आदेश एमपी संख्या 1146 के2010।
139. सोहन लाल बनाम पंजाब राज्य, पंजाब और हरियाणा के उच्च न्यायालय सीआरएल में 24 मार्च 2011 का आदेश। 2011 की संशोधन संख्या 31।
140. श्रीनिवास राम कुमार बनाम महाबीर प्रसाद एवं अन्य, एआईआर 1951 एससी 177
141. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चाल रामकृष्ण रेड्डी, (2000) 5 एससीसी712।
142. बिहार राज्य बनाम रामेश्वर प्रसाद बैद्य और अन्य,एआईआर 1980 पैट 267
143. एमपी राज्य बनाम बाबूलाल रामात्रण और अन्य, एआईआर 1958 एमपी 55
144. मध्य प्रदेश राज्य बनाम चिरोजीं लाल, एआईआर 1981 एमपी 65
145. मध्य प्रदेश बनाम दल सिंह और अन्य, एआईआर 2013 एससी 205 9।
146. मध्य प्रदेश राज्य प्रेमबाई और अन्य, एआईआर 1979 एमपी 85।105
147. मध्य प्रदेश राज्य बनाम साहेब दत्तामल एवं अन्य, एआईआर 1967 एमपी246
148. महाराष्ट्र राज्य बनाम रवि कांत पाटिल, एआईआर 1991 एससी 871
149. उड़ीसा बनाम दुल्हवार बरिक, 2017 (आई) ओएलआर 824
150. उड़ीसा बनाम पद्मलोचन पांडा, एआईआर 1975 ओर 41
151. पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, एआईआर 2013 एससी 3368
152. राजस्थान राज्य बनाम नेत्रपाल, (2007) 4 एससीसी 45
153. राजस्थान राज्य बनाम शेरा राम, एआईआर 2012 एससी 1
154. राजस्थान राज्य बनाम विद्यावती एमएसटी, एआईआर 1962 एससी 933।
155. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नवाब सिंह, एआईआर 2004 एससी 1511
156. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम प्रेमी, एआईआर 2003 एससी 1750
157. राज्य बनाम बाला प्रसाद, एआईआर 1952 राज 142
158. राज्य बनाम मोहम्मद नौशाद एवं अन्य, दिल्ली उच्च न्यायालय आपराधिक अपील संख्या 2010 के 948, 949, 950 और 951 में आदेश 22 नवंबर 2012।
159. राज्य बनाम साकिब रहमान एवं अन्य, विशिष्ट केस आईडी 02405R1310232005
160. राज्य बनाम टी वेंकटेश मूर्ति, एआईआर 2004 एससी 5117
161. सुबे सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2006) 3 एससीसी 178।
162. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम मनमोहन सिंह और अन्य (2012) 3 एससीसी 64।
163. सुनीता बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, 151 (2008) डीएलटी192।
164. उच्चतम न्यायालय कानूनी सहायता समिति विचाराधीन कैदियों का प्रतिनिधित्व करती हैकैदी बनाम भारत संघ और अन्य, (1994) 6 एससीसी 731

165. उच्चतम न्यायालय कानूनी सहायता समिति विचाराधीन कैदियों का प्रतिनिधित्व करती हैकैदी बनाम भारत संघ और अन्य, (1994) 6 एससीसी 731
166. टी एन ढक्कल बनाम जेम्स बेसनेट और अन्य। (2001) 10 एससीसी 419।
167. टीके एपू नायर बनाम अर्नेस्ट और अन्य, एआईआर 1967 मैड 262।
168. तस्लीमा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 161 (200 9) डीएलटी 660।
16 9. ठाकुर तिवारी, (1900) 4 सीडब्ल्यूएन 347।
170. थाना सिंह बनाम सेंट्रल ब्यूरो ऑफ नारकोटिक्स, (2013) 2 एससीसी 590
171. 'एड होक' कमेटी, इंडियन इंश्योरेंस कंपनी एसोसिएशनपूल बनाम श्रीमती राधाबाई, एआईआर 1976 एमपी 164
172. उत्तर प्रदेश राज्य मोहम्मद नाइम, एआईआर 1964 एससी 703।
173. यूपी राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम यूपी राज्य, 2000 सभीएलजे 1461।
174. भारतीय संघ बनाम इब्राहिम उदीन एवं अन्य, (2012) 8 एससीसी 148।
175. उत्तराखंड संघर्ष समिति बनाम यूपी, (1996) 1 यूपीएलबीईसी 461
176. विबिन पी.वी. बनाम केरल राज्य, एआईआर 2013 केर 67
177. विद्या चरण शुक्ला बनाम पुरुषोत्तम लाल कौशिक, एआईआर 1981 एससी 547
178. वुडफॉल (1770) 5 बुर. 2661।